विषय-सूची

प्रस्तावना

इस पुस्तकके प्रथम भागमें हमने देखा कि एक व्यक्तिके नाते मनुष्य किस प्रकार पेश आता है। उसमें हमने देखा कि कुदरत कैसे काम करती है और यह भी जाना कि विज्ञान याने कुदरतके कामका अभ्यासही है और उसका मक़सद मनुष्यको कुदरती तौरपर काम करना आसान बना देना है। इस रास्तेसे हम ज़रा भी विचलित हुए तो हिंसा और गड़बड़ी पैदा हो जाती है। बहुतेरे प्राणी स्वाभाविक तौरसेही कुदरतके रास्ते चलते हैं; पर मनुष्यमें इच्छाशक्ति और बुद्धि ये दो चीज़ें अधिक हैं इसलिये वह समझ बूझकर और इरादापूर्वक कुदरतके रास्तेपर चलता है। अन्य प्राणी और मनुष्य इनमें यही मुख्य फ़र्क़ है। अपने ज्ञानपूर्वक बीतनेवाले जीवनमें मनुष्य अपनी करतूतोंको नापनेके लिये कैसे विभिन्न पैमाने बनाता है और उसकी सुप्त शक्तियोंके विकास और उत्कर्षमें काम कैसे सहायक होता है यह भी हमने देखा।

मनुष्य जब इस प्रकार काम करने लगता है तब वह स्थायी समाज व्यवस्था निर्माण करनेमें सहायक होता है जिससे पिछले महायुद्धों सरीखी उथलपुथल नहीं निर्माण होती।

इस दूसरे भागमें हम देखेंगे कि मनुष्यका सामाजिक जीवन कैसा होता है।

जानवरोंमें ऐसी शक्तियां देखी जाती हैं जो खास कामके लिये समान वर्गके जानवरोंको एकत्रित लाती हैं। भेडिये जैसे शिकारी जानवर झुंड बनाकर शिकार करते हैं। उनका हेतु स्वार्थपूर्ण रहता है और उनका जीवन परोपजीवी होता है।

उधर दूसरे भी जानवर हैं जो आक्रमण करनेके लिये नहीं बल्कि आत्म-संरक्षण करनेके लिये झुंड बनाते हैं; उदाहरणार्थ गाय-बैल और हाथी। झुंडके हरएक प्राणीका आत्मसंरक्षणका स्वार्थतो रहता ही है, पर सामूहिक दृष्टिसे हरएकको समूहके संरक्षणकी जिम्मेदारी उठानी ही पड़ती है।

पहले भागमें हम देख चुके हैं कि पाश्चिमका सामाजिक और आर्थिक ढांचा परोपजीवी होनेसे वह भेडियोंके गुट्ट जैसा है। उसे आत्मरक्षणार्थ दूसरे

गुट्टोंपर आक्रमण करना पडता है। परोपजीवी व्यवस्थासे ऊपर चढ़ते चढ़ते इस पराश्रयी और पुरुषार्थयुक्त व्यवस्थाओंमेंसे गुजरकर समूह-प्रधान व्यवस्थापर पहुंचते हैं।

समूह-प्रधान व्यवस्थामें दो भेद होते हैं। एकमें केवल निजी हकोंका ही प्राधान्य रहता है, जैसे भेडियोंके गुट्ट और दूसरेमें निजी कर्तव्योंका भी ख्याल किया जाता है।

जैसे जैसे मनुष्यकी उत्क्रांति होती जाती है वैसे वैसे उसके कर्तव्योंका भान बढ़ता जाता है और समाजका घटक बननेके नाते उसे क्या फायदे होते हैं यह देखनेके बजाय सामाजिक स्वास्थ्यको टिकाये रखनेके लिये उसे क्या क्या करना चाहिये इसका भान बढ़ता जाता है। अंतमें वह सेवा–प्रधान व्यवस्थातक पहुंच जाता है जिससे समाज सेवामें वह आत्मदर्शन करने लगता है।

इस भागमें भेडियोंके गुट्टके समान बने हुए समूहकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि मनुष्यमात्रके कल्याणकी दृष्टिसे, मनुष्य किस प्रकार सामाजिक जीवन व्यतीत कर सकता है यह हम देखेंगे।

आज यदि दुनियामें किसी चीजकी जरुरत है तो इस ज्ञानकी कि आदमी मिल जुलकर काम कैसे करें और दूसरोंका नाश किये वगैरे मनुष्यमात्रकी भलाई कैसे साधें। ऐसी व्यवस्थामें प्राप्त भलाई शायद नजरोंमें भरनेवाली भले ही न हो पर वह टिकाऊ अवश्य होगी।

भेडियोंके गुट्टवाली पश्चिमी व्यवस्थासे क्या परिणाम निकल सकते हैं यह हम देख ही रहे हैं। उनका अनुकरण करनेसे वैसे ही परिणाम यहां भी निकलेंगे। आज योरपकी क्या हालत है यह उस व्यवस्थाके परिणामोंका ज्वलंत उदाहरण है। करीब १५० साल तक बडी तेजीसे और बडे बडे केंद्रित कारखानोंमें धूम धडाके साथ उत्पादन करनेके बावजूद आज वहांकी जनता भूखी और नंगी है और अन्य उपभोग्य वस्तुओंकी भी वहां नितांत कमी है। करोडों लोगोंको अपनी जानसे हाथ धोना पडा है और दर्यामें डूबकर या बमों द्वारा नाश पाकर कितनी संपत्ति बर्बाद हुई होगी इसका कोई हिसाब ही नहीं। हमें तो स्थायी समाज व्यवस्था निर्माण करनी है इसलिये ऐसी गुट्टवाली व्यवस्थासे हम चार कदम दूर रहना चाहिये। गुट्टवाली व्यवस्थाके कारण अंतमें झगडा और विनाश अवश्य-

भावी है। कुछ समयके लिये भले ही उसमें चमक दमक दिखाई दे, पर अंतमें चलकर वह जलकर खाक होनेवाली ही है, इसलिये वह क्षणभंगुर ही है। इसलिये हिंदुस्तानमें गुट्टकी व्यवस्थाके क्या परिणाम निकल सकते हैं यह देखनेके लिये समय वर्बाद करनेकी जरूरत नहीं।

हमें तो स्थायी समाज व्यवस्था निर्माण करनी है इसलिये हमें यह देखना चाहिये कि मनुष्य समाजमें कैसा वर्ताव रखे और उससे कैसे एकात्मभाव प्राप्त करें। तभी हम स्थायी समाज व्यवस्था निर्माण करनेमें कुछ प्रगति कर सकेंगे।

पहले भागमें हमने देखा कि मनुष्य समाजमें एक व्यक्तिकी हैसियतसे कैसा वर्ताव रखता है। उसके उपभोगोंके लिये कौनसे मूल्यांकन काममें लाने चाहिये यह भी हमने देखा।

अब इस भागमें हम देखेंगे कि पूरे समाजका उत्पादन और वितरणके निस्वत कौनसा रवैया रहना चाहिये। समूहमें काम करनेके तीन तरीके हो सकते हैं। (१) उत्पादनके लिये वह अकेला ही काम करता है, पर कभी २ खास क्रियाओंके लिये समान धर्मियोंसे उसे सहयोग भी करना पड़ता है। अपने पड़ोसीके साथ किये हुओ इस काममें उसका खुदका फायदा होता है और साथ ही साथ पड़ोसीकाभी फायदा होता है और अंतमें पूरे समाजका भी फायदा होता है। (२) कभी २ मनुष्य मिल जुलकर काम करते हैं, इसीको सहकारिता कहते हैं और वह समूह-प्रधान व्यवस्थामें कामका दूसरा तरीका है। (३) कामका तीसरा तरीका वह है जिसमें व्यक्तियोंको या सहकारी संस्थाओंको तात्कालिक फायदेके काम सौंपे जाते हैं और लंबी मियादके बाद फायदा मिलनेवाले काम ऐसे निःस्वार्थी लोगोंके गुट्टको सौंपे जाते हैं, जिनको सामाजिक उत्कर्ष ही सर्वोपरि है। ऐसे गुट्टको हम 'राज्य' कहते हैं। दुनियाके मौजूदा तथाकथित राज्योंमें ऊपरकी व्याख्यामें बराबर बैठ सके ऐसा राज्य दिखाना शायद मुश्किल है। आजके राज्य आम जनताके हितोंका ख्याल ही भूले हुएसे दिखाई देते हैं।

प्रथम हम समाजके लिये योजना कैसी होनी चाहिये यह देखेंगे, बादमें मनुष्य अपने पड़ोसीका हित ख्यालमें रखकर अपनी आवश्यकताएं पूरी करनेमें कौनसा रुख अख्तियार कर सकता है यह देखेंगे। उसके बाद हम यह देखेंगे कि सहकारी प्रयत्नोंसे

कौन कौनसे काम हो सकते हैं और अंतमें यह देखेंगे कि राज्यके कर्तव्य क्या हैं और लोगोंको अपना ध्येय साध्य करानेमें राज्य या सरकार किस हदतक सहायक हो सकती है। इन सबका विचार करते समय हमें प्रथम भागमें निर्दिष्ट सिद्धांत हमेशा ख्यालमें रखने पड़ेंगे। क्योंकि जब मनुष्य सामूहिक रूपसे काम करता है तब भी उसे वेही सिद्धांत लागू होंगे, जो व्यक्तिगत मनुष्योंको लागू होते हैं।

पहले और दूसरे भागमें निर्दिष्ट योजनाओंपर यदि पूर्ण रूपसे अमल किया जाय तो अहिंसापर अधिष्ठित ऐसी समाज रचना निर्माण होगी जिसमें मनुष्योंकी प्राथमिक जरूरियातें खूब अच्छी तरह पूरी होंगी, इसलिये उनसे आंतरराष्ट्रीय शांति निर्माण होगी।

अध्याय १

योजनाकी आवश्यकता और उसका स्वरूप

हम यदि कोई योजना बनाना चाहते हैं तो वह आखिर किस हेतुसे बनाते हैं ? कई लोग ऐसा मानते हैं कि राष्ट्रीय योजना बनाना बडी-टेढी खीर है और केवल तज्ञ और विशेषज्ञ ही उसे समझ सकते हैं । पर वास्तवमें यदि एक मामूली आदमी भी हमारी योजनाका मकसद या हेतु नहीं समझता है तो हमारी वह योजना बेकार है । यदि हमारे किसान हमारी योजनाका मतलब नहीं समझते हैं और उसे कार्यान्वित करनेमें दिलोजानसे सहायक नहीं होते हैं तो वह राष्ट्रीय योजना नहीं कही जा सकती । यह मूलभूत बात हम जबतक अच्छी तरह नहीं समझ लेते हैं तबतक हम कोई भी योजना कार्यान्वित नहीं कर सकते । हां, यदि हम रशिया जैसा हिंसाका उपयोग करें तो फिर रशियाके माफिक कोई भी योजना हम 'राष्ट्रीय' कह सकते हैं । अपनी योजना कार्यान्वित करनेमें हम खून बहाना नहीं चाहते । हम तो यह चाहते हैं कि योजना लोगोंके सामने रखी जाय । उसे देखकर लोग स्वयम् समझ लें कि वह उनके फायदेकी है या नहीं । यदि वे उसे पसंद करते हैं तो उनका सहकार्य हमें अवश्य मिलेगा ।

हमें तो ग्रामोंका ऐसा संगठन करना है जिससे कि ग्रामीण जनता अधिक सुखी और समृद्ध बने और हर एक व्यक्तिको व्यक्तिगत तौर पर और एक अच्छे संगठित समाजके घटकके तौरपर, विकासकी पूरी गुंजाइश रहे । यह काम स्थानिक व्यक्तियोंकी सहायता और स्थानिक साधन-सामुग्रीके अधिकसे अधिक उपयोग द्वारा ही किया जाना चाहिये । आर्थिक, राजकीय और सामाजिक सभी क्षेत्रोंमें सहकारिता द्वारा ऐसी ही उत्क्रांति होनी चाहिये । इसलिये स्वयंपूर्ण और संगठित गांव बनाना यह हमारा ध्येय होगा । जिस गांवमें जो भी योजनाएं बनाई जायँ वे उस गांवके फायदेकी तो होनी ही चाहिये, पर साथ ही साथ वे समूचे देशकी बड़ी योजनाके विरोधी न होनी चाहिये । इस तरीकेसे काम करनेसे अंततोगत्वा एक न्याय्य और प्रजातंत्रवादी समाज व्यवस्था आप ही आप निर्माण हो जायेगी ।

९५५

नियोजनके मानी क्या हैं ?

कुछ साध्यको सफल करनेके लिये कई बातें इकट्ठी करनी, इसको हम नियोजन कह सकते हैं। हिंदुस्तानमें वे कौनसी बातें हैं जिन्हें हमें एकसूत्रमें लाना चाहिये ? हो सकता है कि हमारे नियोजनमें ऐसी कई बातें होंगी जोकि दूसरे देशोंमें नहीं पाई जातीं। इसलिये जो नियोजन रूसने जारी किया या इग्लैंड या अमेरिकाने स्वीकृत किया वह हमें हमारे ध्येयपर पहुंचानेके लिये उपयुक्त न होगा।

हम जो ग्रेट ब्रिटेन का नियोजन वतलाते हैं वह एक ताज्जुबकी बात है। ब्रिटिश लोग योजना नहीं बनाते पर योजनापूर्वक काम करते हैं। वह उनकी खासियत है। वे हरएक आदमीको विशिष्ट योजनाके मुताबिक काम करनेपर बाध्य करते हैं। अव्वलमें यदि कोई नियोजन न होता तो आज ब्रिशिट साम्राज्य और ब्रिटिश व्यापार दिखाई नहीं देता। ब्रिटिश लोगोंकी आर्थिक कार्रवाइयां, साम्राज्यके मुख्तलिफ मुल्कोंमें जारी की हुई व्यापार विषयक रियायतें, उनका नौदल, उनकी नाविक नीति ये सब उनके नियोजन के अंग हैं। शायद वह राष्ट्रीय नियोजन न होगा; वह एक लंदनसे या बैंक ऑफ इंग्लैंडसे जारी किया हुआ नियोजन होगा, पर वह आखिर है तो नियोजन ही।

सारांश यह है कि ये सब नियोजन— भले वह रूसी नियोजन हो, अमरीकी नियोजन हो या अंग्रेजी नियोजन हो—अपनी अपनी परिस्थितियोंके कारण बने हुए हैं। अगर उन सब चीजोंकी हस्ती हमारे देशमें न हो और उन देशोंकी जैसी अवस्था हमारे देशमें नहीं पाई जाती हो, और ऐसी हालतमें भी हम अगर उन्हींकी राहपर चलकर हमारा नियोजन बनाएंगे तो हम बेशक धोखा खायेंगे।

योजना

हिंदुस्तान जैसे दारिद्र्य, गंदगी, बीमारी और अज्ञानसे भरे देशकी योजनामें नीचे दिये हुए मुख्य कार्यक्रम होने चाहिये :—

१. कृषि

२. ग्रामीण उद्योग

३. सफाई, आरोग्य और मकानात

मक़सद

रूसियोंने जब नियोजन किया तब रूस झारकी हुकूमत के नीचे दबा हुआ था। अमीर लोग धनमदमें मस्त थे और गरीब लोग ज़ुल्मके नीचे रगड़े जाते थे। इसका स्वाभाविक नतीजा यह हुआ कि किसानोंने यह पुकार की कि जब हम सत्ताधारी होंगे तब हम भी मालमस्त बनेंगे। मालमस्त होना इसका मतलब यह है कि अपनी आवश्यकताओंको बढ़ाना और उनको तृप्त करना। रहनेके लिये आलीशान मकान, ऐशोआरामकी अच्छी अच्छी चीज़ें—ये सब पैदा या प्राप्त करना ही उन्होंने अपना मक़सद मान लिया और उसके लिये प्रयत्नशील हुए। उनके नियोजनकी बुनियाद इस तरहकी थी।

हिंदुस्तानमें हमेशा यह कहा जाता है कि हमको गरीबी नाबूद करनी है। लेकिन गरीबीके मानी क्या हैं? किसीने कहा है गरीबीके मानी हैं अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ होना। पर आवश्यकता किसे कहा जाय? क्या रोल्स रॉइस मोटरगाडी एक आवश्यक चीज़ है? यदि कोई स्त्री लिपस्टिक (ओंठ रंगनेकी डिब्बी) खरीदना चाहती है पर उसके पास उतने पैसे नहीं है तो क्या वह गरीब है? कई आवश्यकताएं बुनियादी रहती हैं और कई कृत्रिम। कई आवश्यकताएं ऐसी रहती हैं जिनकी पूर्तिके बिना आदमी का जीना असंभवसा हो जाता है। आदमीको अपने व्यक्तित्वके विकासके लिये और अपनी हस्ती टिकाये रखनेके लिये वे आवश्यक होती हैं। ये कुदरती भी हैं और इन्हींकी पूर्तिके लिये हम कोशिश करेंगे, न कि कृत्रिम आवश्यकताओंकी।

बुनियादी आवश्यकताओंमें भी अहम दर्जेकी कौनसी हैं? प्रथम तो भोजन है। आप नंगे रह सकते हैं, पर भूखे नहीं रह सकते। हमारे देशमें अकाल आकस्मिक न बनकर कायमकी चीज़ होगई है। इसलिये हमारी योजनाका उद्देश्य इस हालतको मिटानेका होना चाहिये। अकालसे हम कैसे बचें और लोगोंको हम अधिक खुराक कैसे दें? इसके लिये हमारे पास कौनसे साधन हैं?

क्या पूँजीके बलपर यह हम सिद्ध कर सकेंगे ! कई लोग कहते हैं कि आप जितनी अधिक पूँजी लगायंगे उतना आपका उत्पादन अधिक होगा। अर्थशास्त्रोंके पंडितोंने आवश्यक पूंजीका और उसके फलस्वरूप बढ़नेवाली प्रतिशत पैदावारका हिसाब लगाया है। वे शायद मानते हैं कि खेतोंमें पैसा बोनेसे पैदावार बढ सकती है। पर ऐसा कभी नहीं होता।

हमारे देशमें उत्पादनका सबसे बड़ा साधन मनुष्यकी मिहनत है। यदि हमारी आवश्यकताओंकी पूर्ति हमें करनी है तो इस बढ़िया साधनका अधिकसे अधिक उपयोग कर हमें हमारी भूखकी तृप्ति करनी चाहिये।

उत्पादनकी पद्धतिके बारेमें विदेशोंमें ऐसी मान्यता है कि आधुनिक यंत्रोंसे सुसज्जित बड़े बड़े कारखाने खोलनेसे लोगोंकी माली हालत सुधर जावेगी। इस मान्यताको सच माननेके पहले हमें उसकी जांच करनी चाहिये। लाभदायक रीतिसे उत्पादनका संगठन याने उत्पादनके कई घटकोंको योग्य रीतिसे एक जगह लाना। इन घटकोंमें मुख्य हैं कुदरती साधन, पूंजी और मजदूर। विभिन्न परिस्थितियोंमें इनमेंसे कुछ मौजूद रहेंगे और कुछ मौजूद नहीं रहेंगे। ब्रिटनमें जब औद्योगिक क्रांति हुई तब वहां पूंजीकी बहुतायत थी इसलिये वहांकी व्यवस्थामें पूंजी प्रधान है। अमेरिकामें मजदूरोंकी कमी थी पर कुदरती साधन बहुतायतसे थे, इसलिये वहां श्रम बचानेके लिये बनाई गई मशीनोंका प्राधान्य रहा। यदि हम इन दोनों चीजोंको अपने यहांभी वैसे ही बरतने लग जायँ तो साफ है कि मजदूरों की कम आवश्यकता पड़ेगी और बेकारी बढ़ेगी। इसलिये हमारे देशमें, जहां पूंजी कम है और मजदूर अधिक हैं, वहां इंग्लैंड और अमेरिकाकी हुबहू नकल करना गलत होगा।

मनुष्य स्वयम् एक सूक्ष्म यंत्र है। उसमें और अन्य निर्जीव यंत्रोंमें फर्क इतना ही है कि उससे आप चाहे काम लो या न लो, यदि उसे ज़िंदा रखना है तो उसे खाना देना ही पडेगा। इसलिये यदि हम यंत्रोंके द्वारा अन्य आवश्यक चीज़ें पैदा करने लग जाँय, तो भी उनके कारण निठल्ले बने मजदूरोंको खुराक तो देनी ही पड़ेगी। इसलिये अपने देशमें पाई जानेवाली परिस्थिति के लिहाज़से हमें मजदूरोंद्वाराही उत्पादन करने का रवैया अख्तियार करना चाहिये।

यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम इतनी बड़ी मनुष्यशक्ति बेकार जाने देनेकी मूर्खता करते हैं। यह रास्ता कभी हमें खुशहालीके तरफ नहीं ले जा सकता।

किसी राष्ट्रकी समृद्धि केवल उसके भौतिक उत्पादनपर ही निर्भर नहीं रहती। ऐसा उत्पादन तभीतक ठीक है जबतक वह वहांके लोगोंकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिये होता है। इसलिये सबसे पहले तो हमें लोगोंको उनकी आवश्यकताकी चीजें तैयार या पैदा करनेके लिये संगठित करना चाहिये। खानेके लिये भरपूर खुराक, पहननेको समुचित कपड़े और रहनेको ठीक मकान ये पहले नंबरकी जरूरियातें हैं। इनके बाद उनके शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक उन्नतिके लिये औषधोपचार, शिक्षा और सामाजिक सुविधाएँ पूरा करनेका सवाल आता है। जबतक हम अपनी बुनियादी जरूरियातें पूरी नहीं कर लेते तबतक निर्यातके लिये उत्पादन करनेकी बात सोचनाही बेवकूफी है। रुपयोंकी खन खन सुननेकी हविस रखनेवाले कंजूसकी वह हविस पूरी करने के सिवा अन्य कोई आवश्यकता धातुके रुपये पूरी नहीं कर सकते। केवल रुपया बटोरना यही किसीका ध्येय बन नहीं सकता। यदि हमारी व्यवस्था ऐसी हो कि लोगोंके पास रुपया तो काफी आजाता है, पर उनकी आवश्यकताकी चीजें उन्हें मिलतीही नहीं या उन्हें भूखाही रहना पड़ता हो, तो ऐसा रुपया आखिर किस कामका? हमारा पहला कर्तव्य तो लोगोंके लिये भरपेट भोजन, रहनेको मकान और पहननेको कपडे मुहैया करनेका है। दीगर बातें बादकी हैं। कोई भी सरकार, जो सरकार कहलानेका दम भरती हो, उसका पहला फर्ज यह है कि लोगोंकी सारी क्रियाएं उनकी बुनियादी आवश्यकताओंकी पूर्तिमें लगावे।

लोगोंकी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके अलावा उनमें स्वावलंबन, सहयोग और सामाजिक एकताकी भावना भरना यह भी हमारा कर्तव्य है। यदि हम इतना कर लेंगे तो स्वराज्यकी राहकी एक बड़ी मंजिल स्वयंपूर्णताके जरिये पार कर लेंगे।

यहां हमें याद रखना चाहिये कि हम जो योजना बना रहे हैं, या बनाना चाहते हैं, वह चंद लोगोंके लिये नहीं है, बल्कि राष्ट्रके हरएक नागरिकके लिये है। योजना यदि संतोषकारक बनानी है तो उसे हरएक

आदमी के जीवनको स्पर्श करना चाहिये। इतनी विस्तृत बुनियादकी योजना, हमारे जैसे पूंजीके अभाव वाले दरिद्री देशमें, पूंजीके बूतेपर बनाई ही नहीं जा सकेगी। इसलिये जो योजना पूंजीके बूतेपर बनाई जाती है, या खुराक जैसी बुनियादी ज़रूरियातोंकी ओर दुर्लक्ष्य करके बनाई जाती है, या हमारे देशमें उपलब्ध मनुष्य-शक्तिको भुलाकर बनाई जाती है वह हिंदुस्तानके लिये कभी उपयुक्त नहीं हो सकती। पश्चिमके राष्ट्रोंकी योजनाका मध्यबिंदु भौतिक उत्पादन है, याने वे कुदरतके हरएक साधनका उपयोग कर लेना चाहते हैं। पर यह सब किसलिये इसके बारेमें उनकी राय कुछ पक्की नहीं है। मेज़ें और कुर्सियां निर्माण करनेसे हमारी बुनियादी आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं।

यदि कोई नई आर्थिक व्यवस्था हिंदुस्तानके लिए मान्य की जानेवाली हो, तो उसकी शुरुआत किसानसे होनी चाहिये। और क्रमशः उसी नींवपर सारे देशकी आर्थिक व्यवस्था बांधनी चाहिये। इस व्यवस्थासे हम लोग शायद इंग्लैंड और अमेरिकाके लोगों जैसे धनवान न होंगे, लेकिन देशमें खाद्य पदार्थोंकी बहुतायत रहा करेगी। पांच साल पहले इंग्लैंडको भूखों मरनेकी नौबद आगई थी।

अतः वस्त्र और खुराककी स्वयंपूर्णता हिंदुस्तानकी किसी भी योजनाकी बुनियाद होनी चाहिये। हर गांव यदि वस्त्र और खुराककी दृष्टिसे स्वयंपूर्ण न बना तो स्वराज्य मिलना बेकार हुआ। गांवके हरएक व्यक्तिको उचित खुराक और कपड़ा मिलना ही चाहिये। ऐसा जिस योजनामें न होगा वह हमारे देशके लायक नहीं समझनी चाहिये। टाटा-बिर्ला या अन्य नई योजनाएं अमलमें लानेके लिये करोड़ों रुपयोंकी ज़रूरत है जोकि आपके पास नहीं हैं। पर इस नई योजनाके लिए एक पाईकी भी आवश्यकता नहीं है। इसमें ज़रूरत है जनताकी कर्तव्यशक्ति को उचित मार्ग दिखाकर उसका योग्य लाभ उठानेकी।

अध्याय २

खेती

हमें सबसे पहले खुराक और कपड़ोंकी फ़िक्र करनी चाहिये और उस दृष्टिसे हमें खेती और ग्रामीण उद्योगोंपर सारा ध्यान केंद्रित करना चाहिये। खेतीकी पैदावारपर दो दृष्टियोंसे नियंत्रण रखना पड़ेगाः (१) स्थानीय ज़रूरतके भोजनकी चीज़ें तथा अन्य प्राथमिक आवश्यकताओंके कच्चे मालकी उपज उसी प्रदेशमें करना और (२) वहांकी उपज ऐसी बनानेकी कोशिश करना जिससे ग्रामोद्योगोंके लिये आवश्यक सामग्री मिल सके। फैक्ट्रीके लिये पैदावार करना दूसरे नंबर पर आना चाहिये। उदाहरणार्थ मोटे छिलकेके गन्नोंकी फैक्ट्रियोंको ज़रूरत रहती है; इसलिये उनके बजाय गांवकी चर्खीमें पेरे जाने लायक पतले छिलकेके गन्नेकी पैदावार करनी चाहिये। उसी प्रकार लंबे रेशेवाली रुई फैक्ट्रियोंके लिये भले ही अच्छी हो, पर हाथसे कातने के लिये तो छोटे रेशेकी रुईकाही उपयोग होता है, इसलिये उसीकी काश्तको प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। जो अतिरिक्त ज़मीनें हों उनमें ऐसी पैदावार, जिनकी आसपासके प्रदेशोंमें जरूरत हो, की जा सकती है। फैक्ट्रियोंके लिये की जानेवाली गन्ना, तंबाखू, जूट आदिकी पैदावार तो कम से कम, या बिल्कुलही खत्म कर देनी चाहिये। किसान इसी नीतिका अमल करें इसके लिये सरकारको चाहिये कि वह हर ज़मीनमें उपज विशेषकी खेती अनिवार्य कर दे और जो क़िसान पैसेकी लालचसे फैक्ट्रियोंके लिये आवश्यक पैदावार करना चाहें, उनपर भारी महसूल और लगानकी ऊंची दर लगाकर ऐसी पैदावारोंकी ओरसे उन्हें धीरे धीरे उदासीन कर देना चाहिये। सारांश यह है कि खेतीकी पैदावारका मूल्य, जैसे भी हो, फैक्ट्रियोंकी बनी वस्तुओंके मूल्यके आसपास रखनेकी कोशिश करनी चाहिये।

तंबाकू, जूट, गन्ना आदि की व्यापारिक फसलें दोहरी नुकसानदेह हैं। उनके कारण मनुष्य और मवेशी दोनोंकी खुराकमें कमी पड़ जाती है। अनाजकी खेतीसे मनुष्यको भोजन और मवेशियोंको चारा मयस्सर होता है।

अन्न और दूध जैसी प्राथमिक आवश्यकताकी चीजोंसे स्टार्च और केसीन बनाकर व्यापारकी वस्तुएं बनानेकी प्रथा तो जड़से ही खत्म कर देनी चाहिये। फैक्ट्रीके लिये उपयुक्त गन्नेकी खेती कम होनेसे गुड़की उत्पत्तिमें कमी होना संभव है। आज जिन ताड़के झाड़ोंसे मादक ताडी निकाली जाती है उनके रससे—नीरासे—गुड़ बनाकर यह कमी बखूबी पूरी की जा सकती है। ये पेड़ बहुतसे तो बेकार खड़े रहते हैं और बेकार बंजर जमीनमें उगाये भी जा सकते हैं। इनसे हमारी चीनी या गुड़की मांग भलीभांति पूरी हो जावेगी। इस तरह हमारी जो अच्छी जमीन गन्नेकी खेती से बचेगी उसमें अनाज, फल, सब्जी बोकर देशकी भोजनकी कमी की समस्या हल करनेमें सहायता की जा सकती है।

हमें शुरुआत संतुलित आहारसे करनी चाहिये। हिंदुस्तानमें अधिकांश लोग केवल अनाजपर ही निर्वाह करते हैं, और केवल अनाजसे शरीरके लिये सारे आवश्यक द्रव्य काफी प्रमाणमें नहीं मिलते। यदि हम ऐसी व्यवस्था कर सकें कि हर एक गांव अपने संतुलित आहारके लिये आवश्यक चीजोंकी पैदावार करे तो हरएक शख्सको संतुलित आहार मिलना कोई कठिन बात न होगी। उस दृष्टिसे हर एक किस्मकी पैदावार के लिये कितने एकड़ जमीन रख छोडनी चाहिये यह तय किया जा सकता है।

आमतौरसे माना जाता है कि एक एकड़ जमीनसे अनाज द्वारा ही सबसे अधिक केलरी का भोजन प्राप्त किया जा सकता है। यदि केलरियोंका सवाल छोड़ दें, तो भी अनाजमें संरक्षक तत्व भी बहुत कम होते हैं। इसलिये यदि ये तत्व भी अनाजसे ही पूर्ण किये जाने हों तो हमें बहुत अधिक मात्रामें अनाज की जरूरत पडेगी। परंतु यदि फल, दूध, दूधकी बनी वस्तुएं, कड़े छिलके के फल, गुड़, तिलहन इत्यादि भी आहारमें शामिल कर लिये जायँ तो समतोल आहारके लिये इनकी कम मात्रामें ही संरक्षणतत्व मिल सकें। एक एकड़ जमीनमें की गई अनाजकी काश्तसे जितनी केलरी का आहार मिल सकता है उससे कहीं अधिक केलरियां गुड़ और आलूके जातिकी साग द्वारा मिल सकती हैं। इस प्रकार समतोल आहार हमारे लिये एक दोहरा आशीर्वाद होगा और हमारी समस्या भी हल कर सकेगा। इसके कारण प्रति मनुष्य जमीनकी आवश्यकता भी कम

हो जावेगी और साथ ही साथ शरीर की सब आवश्यकताओंकी पूर्ति होनेसे शरीर स्वस्थ और चुस्त बना रहेगा।

हिसाबके अनुसार भारतमें प्रति मनुष्य ७ एकड़ जमीनही अन्नोत्पादनके लिये प्राप्य है। यही थोड़ीसी ज़मीन, मौजूदा हालतमें हमारे लिये समुचित आहार उत्पन्न करनेमें असमर्थ है; पर बनाई गई योजनानुसार वह आवश्यकता की पूर्ति करनेमें समर्थ होगी। इस तरह स्थानिक ज़मीनको इस हिसाबसे बांटना चाहिये कि वहांकी आबादीको समतोल भोजन, कपड़ा और अन्य ज़रूरत की चीज़ें वहांकी पैदावारसे मिल सकें। प्रश्नके इस पहलूपर गौर किया जाना चाहिये और निश्चित योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करने के लिये किसानोंको कानूनन, विशेष ज़मीनमें विशेष खेती करनेके लिये बाध्य करना चाहिये। एक लाखकी आबादीके लिये समतोल खेतीकी योजना नीचेकी तालिकामें दी गई है:—

१. खुराक	औंस प्रतिदिन	कॅलरी	पौंड प्रतिवर्ष	आवश्यक जमीन एकड़ोंमें	बीजके लिये तथा १५% बरबादी आदि के लिये	कुल	ज़मीनका बंटवारा %
अनाज	१६	१६००	३६५,००	४३,४००	६५१०	४९९१०	६५·२
दाल	२	२००	४५·६०	५,४००	८१०	६२१०	८·०
गुड़	२	२००	४५·६०	१२००	१८०	१३८०	१·८
कड़े छिलके के फल	१	१४५	२२.८०	२६००	३९०	२९९०	८·४
तेल	१/२	-----	११·४०	३०००	४५०	३४५०	
घी	१/२	२५५	११४०	-----	----	-----	
दूध	१२	२४०	२७३·७५	----	----	-----	
सब्जी	८	४८	१८२·५०	१६००	२४०	१८४०	२·४
आलू तथा कंद	४	१००	९१ २५	१०००	१५०	११५०	१·५
फल	४	५२	९१·२५	९००	१३५	१०३५	१·४
२. कपड़े			१२·५०	७५००	११२५	८६२५	११·३
कुल		२८४०	——	६६,६६०	९९९०	७६,५९०	१००·०

हिंदुस्तानकी जनसंख्या और उपजाऊ क्षेत्रफलके आंकड़ोंपरसे यह मोटे तौरपर कोष्ठक बनाया गया है। यह सब जगह जैसाका तैसा लागू किया जा सकेगा

ऐसा दावा नहीं किया जा सकता। स्थानिक परिस्थित्यनुसार इसमें आवश्यक हेरफेर अवश्य करने पड़ेंगे। यदि हम फी आदमी १६ औंस अनाज देते हैं तो उसका मतलब होगा कि हमें अनाजके लिये पूरी ज़मींनका ६५.२ प्रतिशत देना पड़ेगा। उसी प्रकार यदि हम प्रति व्यक्ति २ औंस दाल पकड़ें तो हमें पूरी ज़मीनका ८ प्रति शत दालकी काश्तके लिये देना पड़ेगा।

एक लाखकी आबादीके हिसाबसे यह कोष्टक बनाया गया है। यदि एक देहात या कुछ देहात मिलकर इस प्रमाणमें चीज़ें अपने यहां पैदा कर सकें तो वहांके लोगोंकी प्राथमिक आवश्यकताएं पूरी हो सकेंगी। इसलिये हमें इन्हीं चीज़ोंकी काश्त करनेका ध्येय रखना चाहिये। ज़मीन एक सामाजिक देन है और उसका उपयोग पूरे समाजकी ज़रूरत के ख्यालसे किया जाना चाहिये। यदि कोई कहे कि "मेरे पास इतने एकड़ ज़मीन है और मैं उसमें तमाखू बोऊंगा", तो उसे ऐसा करनेका कोई हक़ नहीं है, फिर तमाखूकी काश्तसे भले ही उसे अधिक पैसा मिलना संभव हो। समाजमें रहकर हम हरएक चीज़ अपने मनकी नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ हम सड़ककी दाहिनी ओरसे गाड़ी नहीं चला सकते। ज़मीनपर आपका मालिकी हक है इसमें कोई शक नहीं, पर उसका उपयोग आपको ऐसा करना चाहिये कि हर किसीको फायदा मिले। इसीलिये सुझाया गया है कि खास किस्मकी काश्त करनेके लिये लाइसेंस देनेकी प्रथा पड़नी चाहिये। जिसे अलसी बोनेका लाईसेंस दिया गया हो वह तमाखूकी काश्त कभी नहीं कर सकेगा, फिर तमाखूसे उसे दस गुनी आमदनी होनेकी भी संभावना क्यों न हो।

हमारा ध्येय यह है कि जबतक गांवके लोगोंको उसकी ज़रूरत है तबतक गांवकी पैदावार गांवमें ही रहे, और केवल अतिरिक्त पैदावार ही निर्यात की जाय और वह भी उन्हीं चीजोंके बदलेमें जिनकी कि उस गांवके लोगोंको ज़रूरत हो। उदाहरणार्थ यदि किसी गांवमें कपास होती है तो वह मिलोंमें पहुंचकर उसका तैयार कपड़ा उस गांवमें वापिस आवे यह नहीं होने दिया जा सकता। क्योंकि उस कपड़ेके बदलेमें हमें और कोई चीज़ देनी ही पड़ेगी। यदि हमें हमारी खुराककी चीज़ें नहीं गंवानी हैं तो हमें ही फ़ुरसतके समयमें उस कपाससे कपड़ा बनवानेका काम खुद करना होगा। जब हम ऐसा

करेंगे तब हम गांवकी अनाजकी पूरी पैदावार गांवमें ही रखकर अपनी आवश्य-कताका कपड़ाभी प्राप्त कर लेंगे। इस प्रकार हमारा दोहरा फायदा होगा। पर इस व्यवस्थासे मिलोंको जरूर नुकसान पहुंचेगा। हमारा मुख्य ध्येय गरीबोंका फायदा देखना है और वैसा करते हुए यदि अमीरोंका कुछ नुकसान होता है तो हम उसके लिये लाचार हैं। हम जब इस तरीक़ेसे काम शुरू कर देंगे तभी हम देखेंगे कि गांववाले खुराक और कपड़ेके निस्बत स्वावलंबी बन गये हैं।

इस प्रकार समतोल आहारकी आवश्यक चीजें तय करके हम उपलब्ध ज़मीनका इस कदर बंटवारा करेंगे ताकि लोगोंको आवश्यक खुराक मिल सके। ऐसा होनेके बाद यदि कोई अतिरिक्त पैदावार बच जाय तो ही उसे बाहर भेजनेका विचार करना चाहिये। जो चीज़ें लोगोंको पर्याप्त मात्रामें नहीं मिल सकतीं उन्हें यदि कोई व्यापारी बाहर भेजनेकी कोशिश करे तो वह देशद्रोही कहला-वेगा। उसी प्रकार लोगोंको उपयुक्त व्यवसाय मयस्सर करानेकी दृष्टिसे भी आवश्यक चीज़ें प्राप्त करनेकी कोशिस होनी चाहिये।

अध्याय ३

विनिमय

विविध उद्देशीय सहकारी समितियां

केवल ग्राम उद्योगोंको प्रोत्साहन देनेके लिये ही नहीं बल्कि ग्रामीणोंमें सहकारिताकी भावना निर्माण करनेके लिये सहकारी समितियां बहुत अच्छे साधन हैं। विविध उद्देशीय सहकारी समिति नीचे दिये हुए कामोंके लिये बहुत उपयोगी होगी। जैसे १. उद्योगोंके लिये ज़रूरी कच्चे मालका और ग्रामीणोंकी आवश्यकताका अनाज संग्रह करना २. ग्रामोंकी अतिरिक्त पैदावार बेचनेकी व्यवस्था करना और लोगोंको आवश्यक चीजें वितरित करना ३. बीज, सुधरे हुए औज़ार, हड्डी, मछली और मांसका खाद आदि प्राप्त करना और ग्रामीणोंको बांटना ४. निर्धारित क्षेत्रके लिये एक अच्छा सांड पालना और ५. सरकार और लोगोंके बीचकी टॅक्स आदि वसूल करनेकी कड़ी बनना।

यदि सहकारी समितिके मार्फत अनाजका व्यवहार किया जाय तो उसे यहांसे वहां ले जानेमें जो खर्च पड़ता है, और उससे जो नुकसान होता है, वह बच जायगा। आजकी जो पद्धति है— किसी केंद्रमें सारी पैदावार इकट्ठी करना और वहांसे फ़िर हर एक ग्राममें वह भेजी जाना—इसमें भारी खर्च होता है। सहकारी समितिको यदि यह काम सौंप दिया जाय तो यह सारा खर्च बच जायगा। और सहकारी समितियां आमतौरसे लोगोंकी तथा सरकारकी दोनोंकी विश्वासपात्र रहती हैं।

एक किसान अपनी आवश्यकताका गेहूं अपने पास रख लेगा और अतिरिक्त गेहूं सहकारी समितिमें अपने खातेमें जमा करायेगा। उस साखके बूतेपर वह अपनी आवश्यकताकी अन्य चीजें समितिसे ले लेगा। सरकारी लगान भी इसी प्रकार पैदावारके रूपमें वसूल किया जायगा। उसके लिये नक़द रुपये ही जमा करानेकी आवश्यकता नहीं। आज किसानोंसे लगान नक़द रुपयोंमें वसूल किया

जाता है जिससे उनको काफ़ी तकलीफ होती है। यदि सहकारी समितियोंके पास हाथोंमें अनाज जमा रहा करेगा तो स्थानिक सरकारी मुलाजिमोंकी तनखाका कुछ हिस्सा अनाजके रूपमें देना बहुत सुविधाजनक होगा।

नक़द पैसे चीज़ोंके सच्चे दामोंके प्रतीक नहीं होते। एक आदमीके पाससे दूसरे आदमीके पास चले जानेमें पैसेका मूल्य भी बदल जाता है। एक गरीबके पासका एक रुपया और एक अमीरके पासका एक रुपया इनका मूल्य एकसा नहीं होता। एकके हाथसे दूसरेके पास पैसा जानेसे कभी तो राष्ट्रीय संपत्तिमें वृद्धि होती है और कभी वह राष्ट्रको बिलकुल दरिद्री बना देता है। यों तो दोनोंके हाथमें रुपया रुपयाही दिखाई देता है, पर व्यवहारमें उसकी कीमत बदल जाती है। एक गरीब आदमीके हाथमें वह चार-पांच दिनकी उसकी खुराकका मूल्य रखता है, जबकि एक अमीरके हाथमें वह शायद एक सिगारका ही मूल्य रखता हो। इस प्रकार एक गरीबके हाथसे अमीरके हाथमें पहुंचनेसे रुपयेका मूल्य काफी घट जाता है, पर यदि अमीरके पाससे वह गरीबके पास पहुंच जाय तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। अतः हमारे आयोजनमें हमें देखना चाहिये कि पैसा ऐसे हाथोंमें न पहुंच जाय जहां उसकी कीमत घट जाती है। विविध उद्देश्योंकी सहकारी समिति यही करनेकी कोशिस करती है। समिति किसानोंसे अनाज इकट्ठा करेगी और उसमेंसे सरकारका महसूल अनाजके रूपमें पटा देगी। सरकारी अधिकारियोंको भी सरकारी खातेमेंसे समतोल अरहारके योग्य अनाज आदि खुराकी चीज़ें वह देगी। इतना सब करनेके बाद सरकार और समितिके बीच बहुत कम लेन देन रह जायगा और वह प्रदेशोंके बीच अतिरिक्त पैदावारके परस्पर विनियोगसे पूरा किया जा सकेगा। यदि ऐसा हुआ तो नक़द पैसेकी बुराईको, यदि नाबूद नहीं तो कम तो अवश्य किया जा सकेगा। और ऐसा होनेपर वस्तुका नक़द के रूपमें जो गलत दाम ठहराया जाता है उसके बदले वस्तुका वस्तुके रूपमें सच्चा दाम निश्चित होगा।

अध्याय ४

सहकारिता

बैंकका काम

उद्योग और व्यापारका काम सुचारु रूपसे चालू रखना यह किसी बैंकका प्रमुख कर्तव्य है। इसके अलावा एक सहकारी संस्थाका यह कर्तव्य है कि वह किसी आर्थिक संगठनके घटकोंमें सहकारिता निर्माण करे।

पश्चिमी देशोंमें बैंकोकी सफलता उनमें कितनी रकमें जमा हैं और उन्होंने कितना मुनाफा कमाया इन बातोंपर कूती जाती है। पर हम वैसा नहीं कर सकते। हम तो यह देखेंगे कि किसी बैंककी बदौलत लोगोंकी माली हालत किस हद तक सुधरी है। जितनी हद तक वह सुधरी हुई दिखाई देगी उतनी हद तक वह बैंक सफल मानी जावेगी। लोगोंके आर्थिक जीवनकी कई बाबदोंमें बैंकको अपना हाथ रखना पड़ता है और संभवतः वैसा करते हुए उसे नुकसान भी पडे। किसी बैंकका लोगोंकी खुशहालीसे कितना ताल्लुक है यह रुपया, आना, पाईमें नहीं आंका जा सकता।

पश्चिममें पूंजीपतियोंने उत्पादकोंका खून खींचनेके लिये बैंकोंका पिचकारीकी सुई जैसा उपयोग किया है। रिझर्व्ह बँक और इंपीरियल बैंकने अपने अधिकारोंका इसी प्रकार दुरुपयोग किया। इसीलिये १९४२ के भीषण अकालमें केवल बंगालमें ही ३० लाख आदमी मर गये। इन बैंकोंमें सरकारी पैसे रखे रहते हैं पर इनके कारनामें काफी काले हैं।

पैसा जब तक विनिमयका ज़रिया या क्रयशक्ति संचय करनेका साधन रहता है तब तक उसका ठीक ठीक उपयोग हुआ माना जा सकता है। खरीदी जानेवाली वस्तुएं नश्वर होती हैं, पर पैसा बहुत हदतक नष्ट न होनेवाला होता है। इसलिये जिसके हाथमें पैसा होता है वह वस्तुएं रखनेवाले आदमीसे अच्छी हालतमें रहता है। एक केला बेचनेवालीको यह फ़िक्र रहती है कि केले सड़नेके

पहले बिक जाने चाहिये; पर जिसके पास पैसा है उसे पैसा सड़नेका कोई डर नहीं रहता। इसलिये केलेवालीके विरुद्ध वह बहुत अच्छी हालतमें रहता है। इस असमानतामें पैसेवाला वस्तुवालेसे बेजा फायदा उठा सकनेकी क्षमता रखता है। यह तो मानी हुई बात है कि बैंकें पैसेवाली होती हैं। इस पैसेका वे समाजकी भलाईके लिये उपयोग करती हैं या बुराईके लिये इसपर उनका उद्योगोंमेंका और व्यापारमेंका स्थान अवलंबित रहेगा। यदि एक बैंक अपने ग्राहकोंका नुकसान करके निजी बुनियाद पुख्ता बनानेके लिये अपनी शक्तिका उपयोग करती है, तो वह समाजके आर्थिक संगठनमें अपना कर्तव्य नहीं पालती है ऐसा कहा जावेगा। यह हुआ पैसेका विनिमयके साधनकी दृष्टिसे विचार।

क्रयशक्ति संचयके लिये पैसा

चूंकि पैसा वस्तुओंसे अधिक टिकाऊ है इसलिये उसके इस गुणका लोगोंको अपनी क्रयशक्ति संचित कर रखनेके लिये उपयोग होना चाहिये। एक किसान खेती करता है और हंगाममें अपनी फसल बेच देता है। उसे कुछ रकम मिल जाती है जिसपर उसे दूसरे हंगामतक अवलंबित रहना पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि आगामी १२ महीनोंतक उसे उसी रकमकी एवजमें अन्य चीजें मिलती रहनी चाहिये। पर इस दरमियान यदि पैसेकी क्रयशक्तिमें फ़र्क़ पड़ जाय तो उसी हदतक किसानकी आर्थिक हालत भी बदल जायगी। इसीलिये हमारे सरीखे कृषि प्रधान देशमें ऐसा कोई ज़रिया ढूंढ़ निकालना ज़रूरी है जिससे क्रयशक्ति संचित करनेकी शक्ति कायम बनी रहे। इस दिशामें विविध उद्देशीय सहकारी समितियां हाथ बंटा सकती हैं, क्योंकि वे पैसेका कमसे कम उपयोग लाज़िमी कर सकती हैं। ऐसा करनेसे चीज़ोंके भावोंमें बेजा घटा बढ़ी नहीं होगी और किसानोंकी फसलके आधारपर समितियां उन्हें कुछ आवश्यक सहायता भी कर सकेंगी ताकि किसानोंको अपनी पूरी फसल एकदम न बेंच देना पड़े।

सहकारिता

अब हम सहकारिताके दूसरे पहलूपर पहुंच गये। सहकारितामें स्पर्धा आदिका अभाव अभिप्रेत रहता ही है, पर साथ ही साथ सबके फायदेके डालते हैं। इ... जुलकर काम करनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना यह भी इसका एक

सहकारितामें दूसरेसे बेजा फायदा उठानेका सवालही नहीं उठता। शोषक और शोषित इनमें सहकारिता निर्माण नही हो सकती। यहां जो विदेशी आते हैं वे अपनी चीजें हमें बेचनेके लिये आते हैं। इसी दृष्टिसे वे हमसे नाता जोडते हैं। इसीलिये वे दूसरोंको अपनी गुलामीमें रखते हैं। यदि कोई सहकारी समितियाँ बुनकरोंको अमरीकी सूत मयस्सर कराती हैं तो वे दो परस्पर विरुद्ध चीजोंको एकत्र लाती हैं और इसलिये वे सच्चे अर्थमें सहकारी नहीं हैं। उनका योग्य काम यह है कि वे स्थानिक कातनेवालों और बुनकरोंमें हमजोली निर्माण करें। कच्चे मालके शुरूसे लेकर खपत योग्य तैयार माल बनने तक सारी क्रियाओंमें सहकारिता निर्माण करनी चाहिये। जिस प्रकार एक चांदी का तार मालाके मोतियोंको इकठा रखता है, उसी प्रकार सहकारी समिति तमाम पक्षोंको बांधनेवाला सूत्र बन जानी चाहिये।

सहकारी बैंक भोले भोले ग्रामीणोंको सरकारी नौकरोंके फंदोंसे बचा सकती हैं। ऐसी संस्थाएं फसल इकट्ठी कर सकती हैं, उन्हें स्टोर कर सकती हैं, अपने खाते वालोंके लगान और दीगर टॅक्स दे सकती हैं, पूरे सालतक उचित बाजार भावमें फसल बेंच सकती हैं। ऐसा करनेसे समूची फसल एकदम बाजारमें नहीं पहुंचती और भाव नहीं गिरते। दरयामें चलनेवाले जहाजके वॉटर टाइट कंपार्टमेंटके समान वे काम कर सकती हैं और आर्थिक संगठनमें आकस्मिक धक्का सहन करनेके साधन भी बन सकती हैं।

कोई भी सहकारी समितिकी यशस्विता उसके पक्के आंकडोंपरसे नहीं बल्कि उसके आसपासके बाजारोंपरसे कूती जाती है। यदि बाजारकी दूकानोंमें मिलोंका बना या विदेशी माल भरा पडा दिखाई देगा तो कहना होगा कि हमारी आवश्यकताएं पूरी करनेकी दृष्टिसे उत्पादनके विभिन्न जरियोंमें कोई सहकारिता निर्माण नहीं की गई है। यदि सहकारी संस्थाएं उचित ढंगसे चलाई जायँ तो वे हमारी बुनियादी आवश्यकताओंके निस्बत, याने खुराक, कपडा और रहनेके लिये मकान जान्‌दिके निस्बत, हमें स्वयंपूर्ण बना देंगी। ऐसा जब होगा तब विदेशी कारखानेवालोंको इसलिये जिव्हालालच भरी निगाहोंसे देखनेका कोई कारण न रह जायगा। अर्थात् फिर हालतमें रहता है। टाव नहीं होगा और विश्वव्यापी युद्ध भी न होंगे। इसपरसे यह

स्पष्ट है कि यदि योग्य ढंगसे सहकारी समितियां काम करती रहेंगी तो राष्ट्रीय स्वतंत्रता आप-ही-आप निर्माण होगी और उसके ज़रिये आंतरराष्ट्रीय शांति भी कायम रहेगी।

खाद

आज ग्रामोंमें कूडा, करकट, हड्डियां, मलमूत्र आदि बेकार जाते हैं और सफाई भी बिगाड़ते हैं। इनका यदि कंपोस्ट खाद बना लिया जाय तो वह खेती के लिये बहुत उपयुक्त होगा। कंपोस्ट खाद बनाना बहुत आसान है और वह गोबरके जितना ही उपयुक्त है। हड्डियां और खली इनको कभी ग्रामोंके बाहर जानेही न देना चाहिये, क्योंकि बाहर जानेसे वे एकदम देशके बाहर निर्यात हो जाती हैं। हड्डियोंको प्रथम चूनेकी भट्टीमें भूनकर और फिर चूनेकी चक्कीमें पीसकर वह पाउडर खादके तौरपर ग्रामीणोंको बांट देनी चाहिये। ग्रामीणोंको खादके ठेके दे देने चाहिये। इससे ग्रामोंकी सफाई भी होगी और कंपोस्ट बनानेवाले भंगियोंका दर्जा तिजारत करनेवालों जैसा ऊंचा उठ जावेगा।

तेलकी मिलें देहातोंसे तिलहन ले जाती हैं और उन्हें केवल तेल ही लौटाती हैं। खल्ली सब विदेशोंको भेज देती हैं। पर इस प्रकार वे ज़मीनको एक ऊंची खादसे वंचित रखती हैं। खल्लीकी यह निर्यात कतई बंद कर देनी चाहिये। इसी दृष्टिसे हमारा आग्रह है कि ग्रामोंकी तिलहन ग्रामोंके बाहर जाने ही न देनी चाहिये। वह स्थानीय घानियोंमें ही पेरी जाय। इससे तेल और खल्ली दोनों ग्रामोंमें बने रहेंगे और मनुष्य, जानवर और ज़मीन तीनों समृद्ध होंगे।

ज़मीनका उपजाऊपन बढ़ानेके लिये रासायनिक खाद जारी करनेकी जमकर कोशिशें हो रही हैं। इन खादोंके व्यवहारसे दुनियाको जो अनुभव आया है वह हमें इनसे दूर रखने के लिये काफी है। वे ज़मीनका उपजाऊपन नहीं बढ़ाते बल्कि ज़मीन के लिये एक नशेके तौर पर काम कर जाते हैं। शुरू शुरूमें उत्तेजित होकर ज़मीन भरपूर फसल देती है, पर कुछ समय बाद ज़मीन बिलकुल निस्सत्व बन जाती है। ये रासायनिक खाद ज़मीनके कई जंतु, जैसे केंचुए आदि, जिनकी बदौलत ज़मीनका उपजाऊपन कायम रहता है, मार डालते हैं। इस

प्रकार दूरंदेशीसे यदि देखा जाय तो रासायनिक खाद जमीनको बेहद नुकसान ही पहुंचाते हैं। रासायनिक खादोंके प्रचारके पीछे उन खादोंकी फैक्ट्रियोंके मालिकोंका अपने कारखानोंका माल खपानेकी ही धुन रहती है, फिर ऐसा करते हुए हम खेती को कितना नुकसान पहुंचा रहे है इसकी उन्हें कोई परवाह नहीं रहती।

बीज

चुने हुए बढ़िया किस्मके बीज अच्छे पैदावारके लिये जरूरी हैं। ऐसे बीज वितरण करनेके लिये कोई अच्छी व्यवस्था होनी चाहिये। इसके लिये सहयोग समितियोंसे बढ़कर दूसरा कोई कारगर साधन नहीं हो सकता। ये समितियां बीज पैदा करनेके लिये सुयोग्य संशोधकोंकी देखभालके नीचे खास खेतोंमें खेती करें।

अनाज संग्रह

केवल गलत तरीकेसे अनाज संग्रह करनेसे बड़ी भारी मात्रामें हानि होती रहती है। इस तरह होनेवाले नुकसानका अंदाजा सालाना ३५ लाख टन कूता जाता है। यह सन १९४६ में जितना अनाज कम गया बताया जाता है उसके लगभग है। इसके अलावा कीडे, चूहे, नमी आदि द्वारा जो नुकसान होता है, उससे अनाजकी पोषकतापर जो बुरा असर पड़ता है, वह अलग रहा।

यदि गोदामोंमें अनाज रखनेका काम जहांके तहां किया जाय तो कीड़ोंसे खराब होने, रखनेपर खराब होने और लाने लेजानेमें बर्बाद होने और खर्च होनेके नुकसानसे उसे बचाया जा सकता है।

इसलिये अनाज संग्रह करनेकी समस्या बड़ी जरूरी और हमेशाकी है और उसे हल करनेकी जोरदार कोशिस होनी चाहिये। पर अवैज्ञानिक रीतिसे बने गोदामोंमें अनाज इकठ्ठा करनेकी प्रथाको तो एकदम रोकही देना चाहिये।

कस्बों और शहरोंमें, जहां अधिक गल्ला इकठ्ठा किया जाता है, पक्के सीमेंटके गोदाम बना लेने चाहिये। युक्तप्रांतके मुझफ्फरनगरके गोदाम इस दृष्टिसे आदर्श हैं। ऐसे गोदाम म्युनिसिपैलिटी बनवा सकती है या स्वतंत्र रूपसे बनवाये

जाकर गल्ला इकठा करनेके लिये किरायेपर चढ़ाये जा सकते हैं। इन गोदा-मोंको लाइसेंस दिया जाकर ब्वॉइलरोंकी तरह उनका भी निरीक्षण किया जाना चाहिये।

अगर अनाज गांवमेंही संग्रह किया जाता है, तो उसके शहरमें आने और फिर गांवोंमें वापस जानेका सारा झंझट बच जाता है और उसके खराब होनेकी कम संभावना रहती है।

जो लोग अपना गल्ला खुद खत्तियोंमे रखते हों उन्हें भी उसे ठीक तरीकेसे रखनेका ज्ञान कराना चाहिये।

गांवका कच्चा माल गांवमें ही रहेगा

सबसे बड़ी अड़चन जो ग्राम उद्योगोंके सामने है वह है गांवके दस्तकारको कच्चा माल मिलनेकी मुश्किली। असंगठित होनेके कारण अकेला दस्तकार अपने जबरदस्त मुखालिफ–संगठित और साधन-संपन्न मिलोंके सामने टिकही नहीं पाता। ये साधन संपन्न मिलें कच्चे मालको केवल अपने लिये हथियाकर, तैयार मालभी सुदूर कोनों तकमें पहुंचाकर, बेचारे कारीगर को कहींका भी नहीं रहने देतीं। बैंकोंकी आर्थिक नीति, अन्यायपूर्ण रेलकी दरें, पूंजीपतियोंकी व्यापारिक संस्थाएं सभी बड़े पैमाने पर उत्पादनके पक्षमें होकर बेचारे देहाती कारीगरोंको एक ओर रख छोडती हैं। गांवोंके कारीगरोंके लिये गांवोंमें कच्चा माल कठिनतासे बच पाता है। यह प्रणाली एकदम उल्टी कर दी जानी चाहिये। गांवोंमें पैदा हुआ कच्चा माल गांवोंमेंही रखा जाकर वहीं उसकी खपत होनी चाहिये, और जो केवल अतिरिक्त माल बचे वही गांवके बाहर जाने देना चाहिये। उत्पादन भी उन्हीं चीजोंका कराना चाहिये जोकि ग्राम उद्योगोंके लिये आवश्यक हों, न कि उनका जो मिलोंके लिये जरूरी हों।

औजार और सरंजामका प्रबंध

ग्रामोद्योगोंके काममें आनेवाले औजार और सरंजाम देशके हर भागमें एकसे नहीं होते। कहीं कहीं तो प्रांतके विभिन्न भागोंमें भी वे भिन्न भिन्न हैं।

उनके सुधारके लिये संशोधनकी आवश्यकता है। ग्रामके कारीगरोंको सुधरे हुए औजार और उनके हिस्से बराबर मिल सकें इसके लिये विविध उद्देश्यीय सहकारी समितियां कोशिश कर सकती हैं।

ज़िलोंके प्रदर्शन केंद्र

सहकारी समितियोंके प्रदर्शनकेंद्र ग्रामोंमें होने चाहिये, और उनका काम निम्नलिखित होना चाहिये १. गांवोंके कारीगरोंके लिये औज़ार बनाना और बांटना और उनमें संशोधन करना २. बढइयों तथा अन्य कारीगरोंको शिक्षा देना और विभिन्न उद्योगोंके नवीनतम सुधारोंसे उन्हें अवगत कराना ३. स्थानीय दस्तकारियों और उनके काममें आनेवाले औजारोंका छोटासा संग्रहालय बनाना ४. उस ज़िलेके उद्योगोंकी और वहांके लोगोंके स्वास्थ्यकी जांच करके उसका ब्यौरा बनाना ५. गांवोंकी सर्व सामान्य उन्नतिके लिये स्थानीय सहयोग समितियों और हिंदुस्तानी तालीमी संघके स्कूलोंसे मिल जुलकर काम करना।

अध्याय ५

ग्राम उद्योग

१. धान पिसाई

विविध उद्देशीय सहकारी समितियां कच्चा माल मुहैया करा सकती हैं, तैयार माल संग्रह कर सकती हैं और तमाम ग्राम उद्योगोंकी बनी चीजोंका—खासकर अनाज, कपड़ा और अन्य बुनियादी जरूरियातोंका—वितरण करनेमें सहायक हो सकती हैं। उन्हें ग्रामीणोंके हितके लिये सदैव सतर्क रहना चाहिये। खासकर निम्न बातोंकी ओर ध्यान देना चाहिये—

१. त्रावणकोरकी तरह सब जगह चावलकी मिलें बंद करा दी जायँ और उनके इंजनोंसे सिंचाईका काम लिया जाय।

२. चावल पालिश करनेके हलर्सपर पाबंदी लगा दी जाय।

३. जनताको बिगर छड़े चावलकी पौष्टिकताके बारेमें शिक्षा दी जाय, और उसके पकानेका ठीक ढंग बताया जाय। चावलको पॉलिश करनेकी मनाई कर दी जाय, या उसके पालिश करनेकी हद मुकर्रर की जाय; या उसना चावल इस्तेमाल करनेपर जोर दिया जाय।

४. जहां धान कूटनेका धंधा इस समय चल रहा है, या बड़े पैमानेपर व्यापारिक ढंगसे काम हो रहा है, वहां गांवके काम करनेवालोंको सामूहिक तौरपर धानसे चावल अलग करनेकी मशीनें, छिलके उडानेके पंखे जैसे कीमती औजार, सहयोग समितियोंके मार्फत किरायेपर दिये जायँ।

५. बिना छड़े चावलके प्रयोगसे उसकी खपत बढ़नेपर धानकी यातायात बढ़ जायगी। उस हालतमें उसके एक जगहसे दूसरी जगह जानेमें जो अतिरिक्त किराया लग जायगा उससे चावलकी कीमत न बढ़े इसलिये धानके लिये किरायेके सहूलियतके दर निश्चित किये जाने चाहिये।

६. ऐसी जगहोंमें जहां धान कूटनेकी और चावल पॉलिश करनेकी क्रिया एकदम होती है, वहां छिलका अलग करनेवाली मिट्टी, लकडी या पत्थरकी हल्की चक्कियोंका प्रयोग शुरू किया जाय जिससे चावलका छडा जाना बंद हो जावेगा। ऐसे साधन अन्य ग्रामोद्योगोंके औजारोंके साथ जिलेके प्रदर्शनकेंद्र द्वारा बांटे जा सकते हैं। चावल पॉलिश करनेके साधनोंको कम करनेके लिये उनपर टैक्स लगा देना चाहिये और उनसे पॉलिश होनेवाले चावलकी भी जांच करके उसकी पॉलिश "हदके अंदर" रखी जानी चाहिये। गांवकी आवश्यकताका धान और दूसरा गल्ला गांवमें ही जमा रखना चाहिये। जो अतिरिक्त हो वही बाहर भेजा जाना चाहिये। इन सब कामोंके लिये सहयोग समितियांही उत्तम साधन होंगी।

२. आटा पिसाई

१. अच्छी किस्मके हाथ–चक्कीके पत्थर और बैल–चक्की और पनचक्की बनानेके साधन प्रदर्शन–केंद्रोंके मार्फत वितरित किये जाँय।

२. एकदम सफेद आटा या मैदा बनाना और उसका उपयोग बंद कर दिया जाय।

३. आटेकी मिलें बहुत बडी-मात्रामें आटा पीसती हैं और उसका संग्रह कर रखती हैं जिससे वह सडनेका डर रहता है। इसलिये आटेकी मिलोंको उत्तेजन नहीं देना चाहिये।

४. जहां कहीं संभव हो, बैल चक्कियोंका प्रचार करना चाहिये

५. जहां नदी या नहरोंसे जल-शक्ति मिल सकती हो वहां उसका उपयोग पनचक्कियां लगानेके लिये कर लेना चाहिये।

६. जैसा कि पंजाबमें होता है, ऐसी पनचक्कियां सहयोग समितियों द्वारा चलाई जा सकती हैं।

३. तेल पेराई

देहाती घानियोंको पुनरुज्जीवित करनेमें नीचे दी हुई कठिनाइयां मुख्य हैं:–

१. हंगामके दिनोंमें गांवोंका सब तिलहन गांवोंके बाहर चला जाता है। यह अवस्था बदलनेके लिये केवल अतिरिक्त पैदावार ही बाहर जाय ऐसी व्यवस्था करनी पड़ेगी।

२. कुछ स्थानोंकी घानियां इतनी छोटी और अकार्यक्षम हैं कि उनसे काम चलाना असंभव है। एक ही सूबेमें कई किस्मकी घानियें चलती हैं। इन सबकी कार्यक्षमताकी जांच करके सुधरी हुई घानीकी श्रेष्ठता उन्हें दिखाई जाय।

३. पुरानी तर्जकी घानी बना सकनेवाले बढइयोंकी भी भारी कमी है। तेलियोंको जरूरत पड़नेपर उन्हें प्रयत्नपूर्वक ढूंढना पडता है। उन्हें घानियोंके खुले भाग और अन्य साधन मिलना भी मुश्किल होता है। इसलिये ऐसे केंद्र खोले जायँ जहां तेलियोंको तथा बढइयोंको सुधरी घानी चलाने तथा बनानेकी शिक्षा दी जा सके और वहींसे उन्हें साधन और खुले भाग मिल सकें।

४. तहसीलके तेलियोंकी सहकारी समितियां या विविध उद्देशीय ग्राम सहकारी समितियां तिलहन संग्रह कर रखने, तेल, तिलहन और खलीके भावोंपर नियंत्रण रखने और मिलावट रोकनेमें सहायक होंगी।

४. गुड़ बनाना

१. ताड़-गुड़ बनानेका उद्योग मद्रास और बंगालमें संगठित रूपसे बड़े पैमानेपर किया जा रहा है।

२. **ताड़के पेड़ोंका बोना और उनकी देख भाल :**– ताड़के पेड़ोंको तोड़नेकी सख्त मुमानियत होनी चाहिये। सरकारी बंजर जमीन, जो खेतीके लिये उपयुक्त न हो, ताड़के पेड़ लगानेके काममें लानी चाहिये, जिससे समय पाकर गन्नेके गुड़की जगह ताड़का गुड़ काफी मिल सके। इसके अलावा स्वतंत्र रूपसे जो लोग इन्हें मुंडेरों और अपने खेतोंमें लगाना चाहें उन्हें आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित करना चाहिये। इसके लिये उचित प्रमाणमें अच्छे किस्मके पौधे बांटे जायँ और उनके लगानेका सही तरीका लोगोंको सिखाया जाय।

३. **सहयोग समितियां**—उत्पादन और बिक्री करनेका काम सहयोग समितियोंको करना चाहिये। इन्हें आवश्यकतानुसार कढ़ाये और सेंट्रीफ्युगल मशीनें आदि साधन किरायेपर देनेका जिम्माभी ले लेना चाहिये।

५. मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालनसे दोहरा लाभ है। इसकी वजहसे फसल अच्छी होती है और मधुके रूपमें एक पोषक खाद्य वस्तु भी मिलती है।

प्रदर्शन केंद्र अपने पास कुछ छत्ते रख सकता है और आसपासके गांवोंमें, जहां कहीं मक्खियोंके लायक खुराक मिल सकती हो, उन गांवोंमें उनका विस्तार बढ़ा सकता है। इसके लिये उन स्थानोंकी पहलेसे मधुमक्खी पालन विशारदों द्वारा जांच हो जानी आवश्यक है। एक बार यदि मधुमक्खियां हिल मिल जाती हैं तो वह केंद्र किसानोंको मधुमक्खी पालन सिखाने का केंद्र बन सकता है और उन्हें माफक दामोंमें आवश्यक साधन भी दे सकता है।

६. कपास और ऊन

ऐसे सूबोंमें, जहां कपास पैदा हो सकती है, प्रति मनुष्य १२½ पौंड रुई मिल सके इस हिसाबसे कपासकी खेती के लिये जमीन मुकर्रर कर देनी चाहिये और अखिल भारत चरखा संघके प्रोग्रामके अनुसार उस रुईकी कताईका और सूतके बुने जानेका इंतजाम हो जाना चाहिये।

उसी तरह जहां भेंड पाली जा सकती हैं वहां ऊनके उत्पादनको प्रोत्साहन दिया जाय। इसके लिये भेडकी नस्ल सुधारने और ऊनका वर्गीकरण करनेकी ओर ध्यान दिया जाय।

७. चमड़ा पकाना

हिंदुस्तान दुनिया भरमें सबसे अधिक कच्चा चमड़ा बाहर भेजता है। यदि इस सारे कच्चे चमड़ेको पके हुए चमडेमें परिवर्तित कर सकें तो हम अपने लाखों हरिजन भाइयोंको काम दे सकेंगे। पकानेके लिये समय, अधिक लगनेसे पूंजीकी जरूरत होती है, इसलिये यह काम सहयोग समितियोंके मार्फत होना चाहिये। समितियोंको कच्चा चमड़ा खरीदकर उसके पकानेकी क्रियाके विभिन्न हिस्से ठेके पर करा लेने चाहिये और तैयार पका चमड़ा या उसकी बनी हुई चीजें बेचनी चाहिये।

१. यों तो चमड़ा पकानेका काम हर सूबेमें हो रहा है, पर सब जगह पकाई एकसी अच्छी नहीं होती। कलकत्तेका क्रोम और मद्रासकी 'गवी' अच्छे चमड़े माने जाते हैं; पर इनकी बराबरका चमड़ा बनानेकी कोशिश कहीं नहीं हो रही है। अन्य जगहोंका चमड़ा इनकी तुलनामें बहुत हलका साबित होता है। ऐसा क्यों होता है इसके कारण खोजकर हर जगह एकसे दर्जेका चमड़ा तैयार होनेकी व्यवस्था करनी चाहिये।

२. कच्चे चमड़े और खालोंकी निर्यातको रोकनेके लिये सरकारको भारी निर्यात कर लगाना चाहिये।

३. मरे हुए जानवरोंको ढोनेके लिये सहकारी समितियों मार्फत कुछ चमारोंके समूहोंको सस्ते दामोंपर एक गाड़ी दी जानी चाहिये। ऐसी गाड़ी न होनेसे मुर्दा जानवर घसीटकर लेजाना पड़ता है। अंदाज लगाया गया है कि इस प्रकार घसीटे जानेसे जानवरोंकी खालोंकी कीमत ५० % घट जाती है।

४. आजकल जिस तरीकेपर यह धंधा चल रहा है वह बड़ा अस्वास्थकर है और उसे बिलकुल बदल देना चाहिये। उसके लिये गांवके बाहर थोड़ी दूरीपर जगह मुकर्रर कर दी जाय और वहां इमारत, गड्ढे, नालियां, पानी आदिकी सुविधा कर दी जाय और ऐसी क्रियाएं, जो खासकर अस्वास्थ्यकर हों, उनके लिये सादी मशीनोंका उपयोग किया जाय है। यदि ऐसा करनेमें तहसील या जिलेके चमारोंको एक स्थानपर इकट्ठा करना सुविधाजनक हो तो वह भी लाभदायक ही होगा। ऐसे चर्मालय केवल चर्मकारोंकी अपनी सहयोगी समितियों द्वाराही चलाये जायँ।

५. आज तो थोडीसी जगहोंमें केंद्रित रूपसे बड़े पैमानेपर चमड़ेका सामान बनता है और देशभरमें भेजा जाता है। ऐसी व्यवस्था तोड़नेके लिये उनके मालपर आयात कर लगाकर या स्थानीय चमारोंको आर्थिक सहायता देकर उन्हें वहांकी आवश्यकताकी वस्तुएं जैसे मनीपर्स, जूते, चमड़ेके बक्स, यहांतक कि पट्टे आदि का सामान तक बनानेके लिये प्रोत्साहित करना वांछनीय है।

६. स्वतंत्र ठेकेदारोंको अथवा सहयोग समितियोंको मरे जानवरोंके खून, मांस और हड्डीसे खाद बनानेके लिये आर्थिक सहायता (subsidy) दी जानी चाहिये। यह आर्थिक सहायता खादके अनुपातमें होनी चाहिये।

७. सरेस, तांत, ब्रश और अन्य वस्तुएं भी ये समितियां तैयार कर सकती हैं। सींगका काम भी चमारोंके कुटुंबोंमें भली भांति चल सकता है। उसको प्रोत्साहित करनेके लिये शुरू शुरूमें थोडी आर्थिक सहायता मिलनी चाहिये और बादमें जो माल बने वह सरकार खरीद ले। इस कामके साधन तो अर्थात् किरायेपर ही दिये जाने चाहिये

८ साबुन बनाना

सज्जी मिट्टी और खानेमें न आनेवाले तेल कहां कहांपर मिल सकते हैं इसकी जांच करनी चाहिये और इनको गांवोंमें साबुन बनाने के काममें लाना चाहिये। जहां भी ऐसी मिट्टी मिल सके वहांसे वह बिना किसी टैक्सके ले लेनेकी इजाज़त होनी चाहिये। यहां यह बता देना गलत न होगा कि इस क्षारतत्वको ज़मीनसे हटा लेनेपर ज़मीन उपजाऊ बन जाती है।

९ रोशनी

न खानेयोग्य तेल जैसे नीम, करंजी, रीठा, महुआ, रायन, भटकटाईके बीज इत्यादिका आजकल बहुत कम उपयोग होता है। इन्हें जलानेके काममें लाना चाहिये। इस बातका पूरा प्रयत्न करना चाहिये कि रोशनीके मामलेमें गाँव स्वावलंबी हो।

अखिल भारत ग्राम उद्योग संघका निकाला हुआ वनस्पतिजन्य तेलसे जलनेवाला 'मगनदीप' प्रदर्शन केंद्रों मार्फत बांटा जा सकता है। स्थानीय कारीगरोंको वैसे दीप बनानेके लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।

१० हाथ कागज़

१. प्रांतीय सरकारोंको चाहिये कि वे हाथ कागज़ बनानेका उद्योग उन जिलोंमें शुरू करें जहां उसके बनानेके लिये आवश्यक कच्चा माल पासही मिलता हो। इस कामके लिये एक विशारद द्वारा किस जगह कौनसा माल मिल सकता है इसकी जांच होनी चाहिये।

२. हाथसे कागज़ बनानेमें आवश्यक सब रासायनिक द्रव्य कागज़ केंद्रोंको सहयोगी समितियोंके मार्फत नियंत्रित दामोंमेंही मिलें।

३. अन्य उद्योगोंका और इसका ऐसा मिला जुला एक वर्कशॉप हो जहां इसके लिये आवश्यक मशीनरी जैसे बीटर, कॅलेंडर, मोल्ड्स, स्क्रू प्रेस, लिफाफा-बनानेकी मशीन आदि बने और वहांसे इनका वितरण हो।

कागज़ बनानेवालोंको उपर्युक्त किस्मकी मशीनें सहयोग समितियोंके मार्फत किरायेपर या हल्की किस्तोंमें खरीदनेकी सहूलियतपर दी जायँ। जहां बिजली या अन्य किसी किस्मकी शक्तिसे चलनेवाले मशीनों द्वारा मावा बनता हो वहां उसके बांटनेका भी काम सहयोग समितियां ही करें।

४. आजकल सरकारी दफ्तरोंकी रद्दी, जंगलकी घास और दीगर ऐसी चीज़ें, जो हाथ कागज़ बनानेके काममें आसकती हैं, सबसे ऊंची बोली बोलनेवालेको नीलाम कर दी जाती हैं। वे इन्हीं सहयोग समितियोंको सस्ते दामोंमें हाथ कागज़ बनानेके लिये दी जानी चाहिये। और साथही उनका बना हुआ कागज़ सरकारको अपने उपयोग के लिये ऐसे दामोंपर खरीद लेना चाहिये जिससे कागज़ बनानेवालोंको जीवन-वेतन मिल सके।

५. प्रांतीय शिक्षा केंद्रोंमें हाथसे कागज़ बनानेमें निपुण कारीगर तैयार किये जा सकते हैं।

६. हाथ कागज़ और उसे बनानेके लिये आवश्यक साधनों को रेल्वेसे यातायात करनेमें प्रथम स्थान मिलना चाहिये और हाथ कागज़ चुंगी और ऑक्ट्रॉय आदिसे मुक्त होना चाहिये।

११ कुम्हार काम

१. इसके लिये पहली आवश्यकता है प्रांतमें पाई जानेवाली मिट्टीका पृथक्करण करनेकी।

२. मिट्टियोंको उचित मात्रामें मिलानेके लिये रसायनशास्त्र जाननेकी ज़रूरत रहती है। इसलिये यह काम सहयोग समितियों द्वारा किसी एक केंद्रपर या जेलोंमें हो और इस प्रकार मिलाकर तैयार की हुई मिट्टी कुम्हारोंको दी जाय। इसके अलावा दूसरी सूरत यह है कि वर्तमान कुम्हारोंको मिट्टियां मिलानेके नुस्खे बता दिये जायँ।

३. अन्य उद्योगोंकी तरह यहां भी अच्छी मिट्टी बांटने और संशोधित चाक किरायेपर देनेका काम सहयोग समितियोंका होगा।

४. विशेष प्रकारके बर्तनोंकी भट्टी लगाना और उनपर ग्लेज चढानेका काम भी सहयोगसे करना होगा। मिट्टी मिलाने, चमक देने और भट्टी लगानेका काम किरायेपर या सहयोग द्वारा कुम्हारोंको खुद करना चाहिये। भट्टी लगानेका काम, जो अब भी गांवके कुम्हार करते हैं, सहयोगसे मिल कर अच्छे प्रकारकी भट्टियोंमें करनेपर अच्छा होगा। ठीकसे बनाई गई भट्टियोंमें ईंधनका खर्च भी कम होगा। सभी ग्रामोद्योगोंके लिये सस्ता ईंधन देनेका जिक्र पहले भी किया जा चुका है।

ईंट और कवेलू आदिके लिये आवश्यक भट्टी सहयोगसे बनानी चाहिये और ये चीजें अधिक सुघड बनानेकी कोशिस होनी चाहिये।

५. कुम्हारोंके लिये मिट्टी मिलाना, सुधरी हुई भट्टी बनाना, अच्छे सुडौल बर्तन बनाना और उन्हें चमक देना आदिका थोडे समयकी शिक्षाका किसी सुविधाजनक स्थानमें प्रबंध होना चाहिये।

१२. सफाई और खाद

१. कई तरहके प्रयोगोंके बाद गांवोंके पैखाने किस प्रकारके होने चाहिये यह निश्चित करना चाहिये। हो सकता है कि एकसे अधिक किस्मके पैखाने उपयुक्त हों और आवश्यक भी। किसी भी हालतमें गांव साफ सुथरे रहें यह देखना चाहिये। कुएंवाले (bore hole type) पेशाब घर गांवमें जगह जगह बनाये जायँ।

२. गांवका तमाम मैला और कूड़ा-करकट, इनका खाद बनानेका काम करनेके लिये कुछ आर्थिक सहायता देकर ठेकेदारोंको तैयार करना चाहिये। यह सहायता खादके प्रमाणपर हो, पर साथ ही साथ आकर्षक भी हो। ऐसा किये बगैर यह काम करनेके लिये कोई तैयार न होगा। कमसे कम शुरूके कुछ दिनों या सालों तक ऐसी व्यवस्था करनी ही पड़ेगी।

३. गांवकी सफाईके लिहाज़से गांवमें मवेशी रखना या घरोंमें ही बांधने की प्रथाको रोकना चाहिये । यद्यपि समस्या हल होनेमें लंबा समय लगेगा, परंतु गांवके बाहर अस्तबल और जानवरोंके बाड़े बनाये बगैर उसे साफ रखना कठिन है । जहां नयी बस्तियां बनें वहां जानवरोंको बांधनेका प्रबंध घरोंसे कुछ दूरी पर किया जाना चाहिये ।

केवल गांवोंकी सफाईके लिहाज़से ही बहुतसे लोग सहयोगी डेअरी और मवेशी-घर रखनेकी योजनाएं बनानेके लिये उद्युक्त होते हैं ।

अध्याय ६

प्रजातंत्र

पहले हिंदुस्तान छोटे छोटे देहातोंका प्रजातंत्र था, और हरएक देहात स्वायत्त रहता था। उसकी राज्यकी अपनी खास कल्पनाएं हैं जो समाजमें रहनेवाले व्यक्तियोंकी प्रकृतिपर आधारित हैं।

मनुष्य समाजमें दो किस्मकी प्रवृत्तियां रहती हैं। एक दूरदृष्टिकी अपेक्षा करनेवाली और दूसरी संकुचित दृष्टिकी। हममेंसे बहुतसे लोग दूरदृष्टिसे विचार करनेमें असमर्थ होते हैं, क्योंकि उसमें बिना फल पाये और देखे लंबे अर्सेतक परिश्रम करते रहना ही पड़ता है। और इतना लंबा ठहरनेकी हमारी इच्छा नहीं होती। हम सब जल्द फल प्राप्त करना चाहते हैं। हम खाना, पीना और मौज करना चाहते हैं। सौ मेंसे निन्यान्नवे लोग ऐसे होते हैं। किंतु कई बातें ऐसी हैं जो सारे समाजके हितके ख्यालसे करनी पड़ती हैं और उनमें दूरदर्शिता अपेक्षित रहती है। प्रजातंत्रमें यही अपेक्षित है। यदि प्रजातंत्र सफल बनाना हो और आम जनताकी भलाई करनी हो, तो राज्यकी सत्ता दूरदर्शी लोगोंके हाथमें रहनी चाहिये। संकुचित दृष्टिवाले लोग समाजके लिये खतरा हैं। वे अपनी दृष्टिसे युद्ध निर्माण कर देंगे।

इस दृष्टिसे यदि देखा जाय तो इंग्लैंड और अमेरिका सच्चे प्रजासत्ताक कभी साबित नहीं हो सकते। वहांपर तो तानाशाही ही दिखाई देती है। उन देशोंमें युद्धके खतरेके समय किस स्वरूपका राज्य प्रचलित था, प्रजातंत्र या तानाशाही? बेशक, वहांपर खुले आम तानाशाही जारी थी। यह कोई योगायोग नहीं था, बल्कि वहांकी परिस्थितिका स्वाभाविक फल था। इन देशोंमें बड़े बड़े कारखानोंके जरिये उत्पादन किया जाता है। कारखानोंके मानी हैं सत्ता या अधिकारका केंद्रीकरण, और उसका स्वाभाविक परिणाम है निरंकुशता। अर्थकारणमें निरंकुश सत्ता या तानाशाही रखकर राजनीतिमें आप प्रजातंत्र नहीं

स्थापित कर सकते। वैसा दावा करना लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंकने जैसा है। अर्थशास्त्रमें प्रजातंत्र स्थापित करनेके मानी हैं देहातोंमें किया गया व्यक्तिगत उत्पादन।

अलबत्त सिंचाई, सड़कें और ऐसे अन्य बड़े बड़े काम सामूहिक तौरपर करने होंगे और ऐसे कामोंके लिये दूरदृष्टिवाले लोगोंका चुनाव होना चाहिये। अतः राज्य के सब मंत्री और बड़े बड़े अफसर दूरदृष्टिवाले होने चाहिये। यदि वे हर चीजको रुपये, पैसोंके फायदेकी दृष्टिसे देखें तब तो कहना पड़ेगा कि वे जिम्मेवारी के पदपर बैठनेके क़ाबिल नहीं हैं। दूर दृष्टिमें 'क्या यह पुसाता है'? यह सवाल उतने महत्वका नहीं है जितना कि 'क्या यह आम जनताके फायदेका है?' है। सरकार याने कोई व्यापारी संस्था नहीं है जो हमेशा मुनाफेकी बातें सोचे। अच्छी नौकरशाही तैयार करना ही उसका ध्येय है। सरकारका कर्तव्य लोगोंकी सेवा करना है। यदि लोगोंकी सेवा या भलाई होती है तो कीमत या खर्चेका सवाल उठानाही नहीं चाहिये। वह कार्य होना ही चाहिये। यह मूलभूत सिद्धांत हमें हमेशा याद रखना चाहिये। यही व्यक्तिगत हिसाब और राजस्वमें बहुत बड़ा अंतर है। राजस्व दूरदर्शी होता है। प्रजातंत्रका आयोजन करते समय हरएक नागरिकको इसका भान करा दिया जाना चाहिये कि उस योजनामें उसका हिस्सा कहां और कितना है।

कार्यकर्ता

लेकिन इन सब बातोंकी सफलता उस कार्यको करनेवालोंकी निस्वार्थता-पर निर्भर है। कार्यकर्ताओंमें स्वार्थ रहा तो करोडोंकी मिहनतका नाजायज फायदा उठाया जायगा। इसीलिये हम कॉंग्रेस मिनिस्टरीके बारेमें कहते हैं कि कई जगह काट छांट होनी चाहिये। पिछली कॉंग्रेस मिनिस्ट्रीमें रु. ५०० माहवार तक वेतन उतार दिया गया था, लेकिन इस वक्त उसे बढ़ा दिया गया है; क्योंकि उनकी आवश्यकताएं बढ़ गई हैं। इसमें स्वार्थकी बू आती है। हम लोगोंको किसान के जीवनके दर्जेतक उतरना पड़ेगा। देहातोंमें लोग महलोंमें नहीं रहते, इसलिये हमें भी महल त्यागने होंगे। शहरोंमें कई महल रहते हैं और वहां रईस लोग रहते हैं; पर देहातोंमें कोई महल नहीं होते।

कुछ रोज पहले देहातमें मेरी एक मिशनरीसे मुलाकात हुई । अपने मंत्री रहते हैं उस किस्मके अच्छे सजे धजे बडे बंगलेमें वह रहता था। वहां बिजलीकी व्यवस्था थी, पानी खींचनेके लिये बिजलीके पंप, फ्लशके संडास और अन्य कई किस्मकी आधुनिक सुख सामग्री मौजूद थी। उसके पास २०० एकड़ जमीन भी थी। उसके बंगलेसे कुछ दूर कुटुंबोंके रहने योग्य नमूनेदार मिट्टीके मकान बने थे। उनमें रहनेवाले हरएक कुटुंबको जोतनेके लिये थोडीसी जमीन और पालनेके लिये मुर्गियां दी गई थीं। उस मिशनरीने मुझसे सवाल किया, "हम लोग इन सब बातोंमें काफी पैसा खर्च करते हैं, तिसपर भी देहातियोंपर उसका ज्यादा असर नहीं पड़ता। देहातियोंके हृदयतक हम नहीं जा पाते। क्या इसके लिये आप कोई मंत्र बता सकते हैं?" मैंने कहा, "मंत्र काफी सीधा और सरल है, और वह यह है कि आप अपने रहनेका बंगला प्रथम जला डालिये। आप पश्चिमसे आये हैं इसलिये आपको यहांकी सच्ची परिस्थिति मालूम नहीं है। आप लोगोंको हरएक चीज रुपयों, पैसोंमें गिननेकी आदत हो गई है और जिसके पास अधिक पैसा रहता है उसीकी आप लोग कद्र करते हैं। पर यहां इसका ठीक उल्टा है। यहांके देहाती हमारे सादे कपडोंमेंही हमारी कद्र करेंगे। यदि हमारे कपड़े १।२ जगह फटे हों तो हमारी कुछ अधिक कद्र होगी। यदि हम कुरता पहनना छोड देंगे तो वे हमारे पीछे चलने लगेंगे और यदि हम लंगोटी लगा लेंगे तो वे हमारे पैर पडेंगे। हमारी संस्कृति रुपयों पैसोंमें नहीं गिनी जाती। इसलिये यदि आप इन गरीबोंकी सेवा करना चाहते हैं तो पहले आपको यह महल त्यागना होगा। यदि उनकी झोंपडियां रु. २५० में बनती होंगी तो आपको रु. १२५ वाली झोंपडीमें रहना होगा। ऐसा जब आप करेंगे तभी वे आपकी बातें सुनेंगे। तभी आप लोगोंके प्रति उनका विश्वास पैदा होगा और वे समझ जायेंगे कि आप जो कुछ कर रहे हैं उसमें आपका कोई स्वार्थ नहीं है। आप सोचते हैं वैसा यह देश जंगली नहीं है। जनेऊ परिधान करनेवाले कई आय. सी. एस. अफसर हजारों रुपयोंकी तनख्वाह कमाते हैं, पर वे मालदार हैं इसीलिये उन्हें ब्राम्हण देवता समझकर पूज्य नहीं माना जाता। वे सचमुचमें म्लेंच्छ हैं। हम लोग सच्ची ब्राह्मणी संस्कृतिवाले हैं और उसी दृष्टिसे हम वस्तुओंका मूल्य कूतते हैं। महात्मा गांधीजीका महात्मापन इसीपर अधिष्ठित है। यदि गांधीजी अमेरिका गये होते तो उन्हें देखनेके लिये वहांभी काफी भीड़ उपस्थित होती।

लेकिन हिंदुस्तानी जिस श्रद्धाभावसे उन्हें देखनेके लिये इकट्ठे होते थे वह श्रद्धाभाव अमेरिकनोंमें न दिखाई देगा। हम लोगोंके लिये गांधीजी इसलिये पूज्य थे कि उनका निजी कुछ स्वार्थ कहीं नहीं था"। यही निस्वार्थ सेवा हमारी कांग्रेस मिनिस्ट्रीको पूरी ताकतवर बना सकती है और उनपर लोगोंका विश्वास जम सकता है। उस हालतमें आप जो भी योजना लोगोंके सामने रखेंगे उसे वे खुशीसे अपनाएंगे। उसके लिये बहुत सारे खर्चेकी भी जरूरत न रहेगी।

इसलिये सबसे पहले हरएक व्यक्तिका दृष्टिकोण ऊपर बतायेनुसार बदलना होगा। तभी हम लोगोंको असली स्वराज्य—आर्थिक स्वराज्य, जैसा मैंने ऊपर वर्णन किया है—हासिल हो सकता है। उसी किस्मके स्वराज्यमें हर एकको भरपेट खुराक मिल सकेगी।

एक दरिद्री देशमें सबसे पहले सबके लिये खाने और कपड़ेकी व्यवस्था होनी चाहिये। अर्थात् किसी भी नई व्यवस्थामें कृषि सुधारको सबसे ज्यादा महत्व दिया जाना चाहिये। आप कांग्रेसवाले हों या और किसी भी पक्षके हों, लेकिन आपको यह अन्नकी समस्या प्रथम हल करनी पडेगी।

जागतिक प्रतिक्रिया

केवल इसी जरियेसे दुनियामें शांति स्थापित हो सकती है। हिंदुस्तानियोंका चीनपर बहुत प्रभाव है वह इसलिये नहीं है कि हम अणुबांब बनाते हैं, लेकिन वह भगवान बुध्दके कारण है। ऐसा ही प्रभाव निर्माण करना हमारा मकसद है। हम एक जागतिक शक्ति बनना चाहते हैं, इसलिये हमें ग्रामोंसे शुरुआत कर ऊपरकी ओर उठना चाहिये। सिर्फ हमारे ही सामने नहीं पर सारी दुनियाके सामने जो समस्या आज है वह इसी तरीकेसे हल हो सकती है। सत्ताधीशोंके लिये चाहिये कि वे निस्वार्थ बनकर यह योजना लोगोंके सामने रखें। यह राष्ट्रके लिये एक सच्ची देन होगी।

सरकारका विरोधी पक्ष

लोगोंके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी जब सरकार बनती है तब उसका कार्य योग्य दिशामें चलता रहे इसलिये उसका एक विरोधी पक्ष रहना जरूरी होता है।

नदी उसके किनारोंके कारण ही अपने पात्रमेंसे वहा करती है। यदि ये किनारें पत्थरकी हों तो सबसे अच्छा। यदि वे पत्थरकी नहीं होतीं तो कोई किनारपर तो मिट्टी आ आकर जमती रहेगी और कोई किनार पानीसे धुलती रहेगी। परिणाम यह होगा कि समय पाकर नदी अपना पात्र छोडकर दूसरी तरफसे बहने लग जावेगी। इसलिये नदीके पात्रके लिये पानी और किनारोंमें कोई स्पर्धा नहीं हो सकती।

उसी प्रकार प्रेरक और प्रेरित इनमें कभी स्पर्धा नहीं होनी चाहिये। उनमें हमेशा सहकारिताकी भावना चाहिये।

जिस प्रकार नदीका पानी उसके पात्रमें बना रहनेके लिये नदीकी किनारें पत्थरकी होना अच्छा, उसी प्रकार किसीभी सरकारकी नीति ऐसी शक्तियोंद्वारा संचालित होनी चाहिये जो उसके दायरेके बाहर हों। ग्रेट ब्रिटेनको अभिमान है कि उसने सबसे पहले प्रजासत्ताक पद्धतिकी पार्लियामेंट कायम की। वहां सरकारी खर्चेसे एक विरोधी पक्ष कायम किया जाता है जो सरकारी नीतिकी समय समयपर कड़ी आलोचना कर और सरकारकी नीतिके बारेमें असली लोकमत क्या है यह प्रकटकर सरकारके मंत्रियोंको बहकने नहीं देता है। ब्रिटेनकी पार्लियामेंट याने एक आखाडा ही है जहां कई धुरंधर राजनैतीक पहलवानोंकी हार या जीत हुई है। जो जीतता है वह हारनेवालेको गद्दीसे उतारकर स्वयम् तख्तनशीन होता है। आज जो विरोधी पक्षमें दिखाई देते हैं, वे यदि पार्लियामेंटकी बहसमें बाजी मारले जाते हैं, तो कल शासनके सूत्रधार बन जाते हैं। ब्रिटेनकी पार्लियामेंटमें विरोधी पक्षका यही काम है। उनकी स्पर्धा-प्रधान अर्थव्यवस्थाकी झलक इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्रमें भी दिखाई देती है।

उनके मंत्रिमंडलकी बनावट ही आर्थिक क्षेत्रमें साम्राज्यवादकी परिचायक है। केंद्रीय व्यवसायोंको दुनियाके चारों कोनोंसे कच्चा माल मुहैय्या कराना पड़ता है और उनका तैयार माल सुदूर स्थानोंमें खपानेकी व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिये पैसेका और यातायातके साधनोंका धुवांधार उपयोग और निरंकुश राजनैतिक अधिकार चाहिये। इसलिये मंत्रिमंडलमें विदेशोंसे संबंध, अर्थ और संरक्षण ये विभाग महत्वके बन जाते हैं। इसीलिये ब्रिटिश मंत्रिमंडलमें इन विभागोंके मंत्री बननेकी हमेशा होड लगती है।

स्पर्धा और साम्राज्यवाद, इन दोनोंकी बुनियाद हिंसा ही है। अब हमारे देशकी राज्यव्यवस्था हमारे ही हाथोंमें आगई है। यदि हम अहिंसा का मार्ग अपनाना चाहते हैं तो हमारे यहांकी राज्यव्यवस्था कैसी होनी चाहिये? हमारी सरकारको भी गलत रास्ता अख्तियार करनेसे रोकनेके लिये एक विरोधीपक्ष जैसी कुछ व्यवस्था तो होनी ही चाहिये। पर हम तो सहकारिता-प्रधान अर्थ-व्यवस्था कायम करना चाहते हैं न कि स्पर्धा-प्रधान। इसलिये हमारी सरकारके विरोधी पक्षवाले पार्लियामेंटमें हुई अपनी जीतके कारण सरकारी सदस्योंको स्थानभ्रष्ट करके उनकी जगहों पर स्वयम् विराजमान होनेकी ख्वाहिश नहीं रखेंगे। सहकारिताकी भावना और अहिंसापर अधिष्ठित अर्थव्यवस्थामें व्यक्तिगत उत्कर्ष या बडप्पनके लिये गुंजाइशही नहीं।

इसलिये हमें राज्यके मंत्रियोंको बदलनेकी कोशिश न करके उनके सामने उनके अनुकरणके लिये आदर्श खड़े करनेकी कोशिश करनी चाहिये। रचनात्मक कार्यकर्ताओंको चाहिये कि वे अपने आदर्श बर्तावके प्रकाशसे उन्हें रास्ता दिखावें। अहिंसा-प्रधान व्यवस्थामें रचनात्मक कार्य करनेवालोंपर यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ पडती है।

यह मार्गदर्शक शक्ति निर्माण करनेके लिये रचनात्मक कार्यकर्ताओंका एक अच्छा संगठन निर्माण करना होगा। उनके कामकी अच्छाई और उससे हुई लोगोंकी सेवा यही उनका आधार। राज्यके मंत्री ऐसे संगठनसे स्फूर्ति ग्रहण करेंगे, क्योंकि यह संगठन धर्मातीत राज्यका मार्गदर्शक होगा। यह बहुत जिम्मेदारीका काम अच्छी तरहसे कर सकनेके लिये ऐसे संगठनमें ऐसे तपे हुए, त्यागी आदमी लिये जाने चाहिये, जिनका एक मात्र ध्येय और महत्वाकांक्षा लोगोंकी सेवा ही हो।

यदि उपरोक्त व्यवस्था निर्माण होजाय तो उस हालतमें स्वयंपूर्ण व्यवस्थामें महत्व रखनेवाले महकमे मंत्रिमंडलके जिम्मे रहेंगे। उस हालतमें खेती, जमीनकी उन्नति—जमीनके कटावको रोकना, नयी जमीन तैयार करना, उसे अधिक उपजाऊ बनाना—सिंचाई, नदियोंपर काबू रखना, जंगलात, ग्रामीण और गृह उद्योग, खनिज और बड़े कारखाने, स्वास्थ्य, शिक्षा और गृह विभाग इन महकमोंको प्राधान्य रहेगा। संरक्षण अर्थ और वैदेशिक संबंध कितने भी महत्वके क्यों न हों, पर उन्हें देखनेवालोंको मंत्रिमंडलमें स्थान मिलनेकी कोई जरूरत नहीं।

इस प्रकारके राजनैतिक ढांचेमें रचनात्मक कार्य करनेवालोंके संगठनके कारण लोगोंको चूसे जानेका डर नहीं रहेगा। इस बुनियादपर खड़ी सरकार लोगोंके हितको जरूरी महत्व देगी जिससे सच्चा स्वराज्य निर्माण हो जावेगा।

राष्ट्रीकरण तभी हो सकता है जब सच्ची सत्ता जन साधारणके हाथोंमें हो। हमारी व्यवस्थाकी बुनियाद विस्तृत अनुभवकी पुख्ता बुनियाद होनी चाहिये। यह अनुभव तभी मिल सकता है जब ग्रामीण अपनी जरूरतोंको, अच्छी तरहसे संगठित पंचायतोंके मार्फत् पूरी कर लेनेके आदी हो गये हों। ऐसे अनुभवी लोगोंमेंसे ज़िलेके अधिकारी चुने जावेंगे और उन्हींमेंसे सूबेके लिये नेता और विधिमंडलोंके सदस्य भी आवेंगे। इस प्रकार मजबूत बुनियादपर, संगठित सूबेकी व्यवस्थाको केंद्र सरकारपर काफी अंकुश रखनेकी क्षमता हासिल होगी और ग्रामीणोंके हितकी बातों का अमल कराने लगाना उसके हाथका खेल बन जायगा।

इस प्रकार जब आम जनताके हितको सर्वोपरि माननेवाले तपे हुए नेताओंके हाथोंमें राज्यकी बागडोर रहेगी तभी सच्ची राष्ट्रीय सरकार कायम हुई ऐसा माना जा सकेगा और उस हालतमें यदि राष्ट्रीकरण किया जाय तो ही आम जनताका हित सुरक्षित रह सकेगा।

जबतक ग्रामोंपर अधिष्ठित और ग्रामीणोंद्वारा नियंत्रित केंद्रीय सरकार कायम न होगी तब तक राष्ट्रीकरणका मतलब होगा मालदारोंको गरीबोंको अधिकाधिक चूसनेका मौका देना।

उदाहरणार्थ कुछ रोज़ पहले हिंदुस्तानके हवाई जहाजोंके रास्तोंका राष्ट्रीकरण करनेकी बात बहुत जोरोंसे चल पड़ी थी। आज तो वे गरीब ग्रामीणोंके बूतेके बाहर हैं। उन्हें न तो कभी उनका उपयोग करनेका मौका ही आवेगा और न उनकी उन्हें ज़रूरत ही है। आज तो वे केवल मालदारोंकी मिल्कियत हैं और वे ही उनका उपयोग भी करते हैं। इसलिये आजकी हालतमें हवाई रास्तोंको सरकारने अपने अधिकारमें ले लेनेसे सरकार अपना पैसा इन मालदारोंके हितके लिये हवाई रास्तोंपर खर्च करेगी जिससे मालदारोंको अधिक सुविधाएं मिलेंगी और दूसरे मालदार हवाई जहाजोंकी कम्पनियां खोलकर

उनसे फायदा उठावेंगे। संभव है कि नये एरोड्रोम बनाये जायँ और उनतक पहुंचनेके लिये नये रास्ते भी बनाने पड़े। खानगी कंपनियां राष्ट्रीकरण के स्वांग के नीचे इनके लिये सरकारी पैसा खर्च करावेंगी। वास्तवमें सरकारका पैसा जनसाधारणके फायदेके कामोंमें खर्च होना चाहिये; हवाई जहाजोंके रास्ते दुरुस्त करनेमें नहीं लगाना चाहिये। खानगी कंपनियोंको चाहिये कि वे अबतककी जैसी अपनी आवश्यकताएं निजी खर्चेसे ही पूरी करें। इसमें कुछ मालदार अन्य मालदारोंको शायद चूस भी लें। ग्रामोंपर अधिष्ठित और ग्रामीणोंद्वारा नियंत्रित राष्ट्रीय सरकार जब कायम होगी तब हमें ऐसे कामोंका राष्ट्रीयकरण करना या नहीं इसपर विचार करनेके लिये काफी समय मिल जावेगा।

अध्याय ७

राष्ट्रीय उद्योग

अब सवाल आता है कि उद्योगोंकी संघटना और उनका संचालन कैसे किया जाय। ऐसा करते समय अर्थशास्त्रके दो मूलभूत सिद्धांत—संपत्तिका केंद्रीकरण और उसका विकेंद्रीकरण—अच्छी तरह समझ लेने चाहिये।

केंद्रित व्यवसायोंमें संपत्तिका केंद्रीकरण होता है। इनमें चंद हाथोंमें संपत्ति केंद्रित होजाती है। केंद्रीकरण संपत्तिका हो सकता है या सत्ता का भी। विकेंद्रीकरणकी स्वाभाविक प्रवृत्ति विभाजनकी ओर है, इसलिये यदि हमें अपने समाजमें संपत्तिका केंद्रीकरण टालना है तो हमें केंद्रित व्यवसायोंको त्यागना होगा। हिंदुस्तान सरीखे गरीब देशमें संपत्तिका उचित विभाजन ही इष्ट है, इसलिये हमें विकेंद्रित उद्योगोंका ही अवलंब करना चाहिये।

प्रथम खूब धनोपार्जन करना और बादमें सरकारके ज़रिये उसका विभाजन करना यह भी एक तरीक़ा बताया जाता है। रशिया आज इसी नीतिका अवलंब कर रहा है, लेकिन धन के विभाजन का अधिकार केंद्रित होना भी एक ख़तरनाक बात है। केंद्रीकरण चाहे संपत्तिका हो या सत्ताका दोनोंही बुरे हैं। अमेरिका और इंग्लैंडमें धन केंद्रित हो रहा है और रशियामें धनके विमानजका अधिकार केंद्रित हो रहा है। हिंदुस्तान एक गरीब देश है और उसमें धनका उत्पादन और वितरण साथ ही साथ होना चाहिये। इसलिये जहां रोज़-मर्रोंके इस्तेमालकी चीज़ोंके उत्पादनका सवाल हो वहां केंद्रित पद्धतिको एकदम बंद ही कर देना पडेगा।

केंद्रित व्यवसायोंका स्थान:

केंद्रित व्यवसाय तभी चलाये जायँ जब कि उन्हें चलानेवालोंका उद्देश्य मुनाफाखोरी या धन इकठ्ठा करना न हो। केंद्रित व्यवसायोंमें धन केंद्रित होनेकी जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है उसे ही रोकना चाहिये। ऐसा करनेका तरीक़ा क्या

है ? ये सब व्यवसाय सेवाकी दृष्टिसे ही चलाये जाने चाहिये। विद्युत् उत्पादन, यातायातके साधन, डाक खाने आदि सब काम सेवाभाव से और निस्वार्थी लोगों-द्वारा संचालित सरकारके ज़रिये ही किये जाने चाहिये। यदि हमें मोटरोंकी या हवाई जहाजोंकी ज़रूरत हो तो सरकारको ही उन्हें बनाना चाहिये। सरकार द्वारा चलाये जानेवाले व्यवसायोंमें अधिक खर्च होता है ऐसी एक मान्यता है। पर यह अपव्यय स्वाभाविक मान कर क्षम्य समझना चाहिये। धन के केंद्रीकरण में अधिक अपव्यय होता है। केंद्रीय व्यवसायोंमें धन और सत्ता केंद्रित होनेकी प्रवृत्तिके कारण ही पिछले विश्वव्यापी महायुद्ध हुए। उनमें किस प्रकार पानीके समान पैसा बहाया गया यह सभी लोग जानते हैं।

केवल लाचारीके रूपमें केंद्रीय उद्योग रखे जा सकते है। वे ज़हर सरीखे हैं। कभी २ ज़हर भी फायदेमंद होते हैं जैसे कि कुनैन। हकीमकी देखभालमें थोडी-थोडी मात्रामें इस्तेमाल करनेसे कुनैन फायदा करती है। उसपर आप धोखे का निदर्शक लाल लेबल लगा देते हैं और थोडी थोडी मात्रामें उसे इस्तेमाल करते हैं। उसी प्रकार यदि आप केंद्रीय उद्योग, जो कि राष्ट्रके लिये एक ज़हर के समान हैं, रखना चाहते हैं तो उनपर भी आप ज़हर का निदर्शक लाल लेबल लगा रखिये और हकीमके आदेशानुसार वख्त ज़रूरतपर थोडी थोडी मात्रामें उसका सेवन करते जाइये। अन्यथा आप धोखा खायंगे। केंद्रित व्यवसाय स्वभावतः समाज विरोधी होते हैं। इसलिये उनके लिये कोईतोभी मर्यादा निश्चित करनी चाहिये। इसकी मर्यादा क्या हो सकती है ? इसकी मर्यादा यही हो सकती है कि समाजको तो उसकी ज़रूरत हो पर किसी व्यक्तिके हाथमें चले जानेसे उसको ठेकेका स्वरूप मिल जाता हो। उदाहरणार्थ पानीका इंतजाम (water-supply)। यह काम हमेशा सरकारको ही करना चाहिये। जिन कामोंमें दूर दृष्टिकी ज़रूरत है ऐसे सब काम सरकारके ही ज़िम्मे रहने चाहिये।

लागत और लाभः

कई लोग सस्ते महंगे की दृष्टिसे भी विचार करते हैं। उनका कहना है कि केंद्रित उद्योगोंमें खर्च कम लगता है और चीज़ें सस्ती बनती हैं। लेकिन यह हमेशा सही नहीं होता। लोकोपयोगी कामोंके लिये, उदाहरणार्थ रेल्वे, पोस्ट, टेलिग्राफ, बिजली, नहरें आदि, जो स्वभावतः एकाधिकार की अपेक्षा करते हैं,

यदि केंद्रित ढंगपर सेवा भावसे चलाये जायँ, तो उनमें कोई आपत्ति नहीं। जब स्वयम् सरकार ऐसे उद्योग चलाती है तब उनमें मुनाफाखोरीको कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। व्यक्तिगत व्यवहारोंमें लाभ उठानेकी प्रवृत्ति ज्यादा होती है। खर्च ज्यादा हो तो फायदा कम और खर्च कम हो तो फायदा अधिक होता है। इसलिये व्यक्तिगत व्यवहारोंमें खर्चा घटानेकी प्रवृत्ति ज्यादा रहती है। और खर्चा घटानेका सबसे आसान तरीका याने नौकरोंके वेतनमें कटौती करना, कच्चा माल सस्ते दामोंमें खरीदनेकी कोशिश करना और व्यवस्था खर्च यथासंभव घटाना यही है। इससे केंद्रित व्यवसायका संगठन करनेवाला धनवान हो जाता है और उसे कच्चा माल पुजानेवाले और उसके मजदूर गरीब होते जाते हैं। इस प्रकार संपत्तिका असमान विभाजन शुरू हो जाता है।

ग्राम उद्योगोंमें ऐसा नहीं होने पाता। कीमत थोडी ज्यादा होने परभी उनमें मुनाफाखोरीका उद्देश्य नहीं होता। हरएक को योग्य मुआवजा मिलता रहता है। इसीलिये ग्रामोद्योगी चीजोंकी कीमतें थोडी ऊंची और केंद्रित उद्योगोंकी चीजोंकी कीमतें कुछ कम रहनेपर भी हमें चिंता नहीं करनी चाहिये। हम केवल संपत्तिका असमान विभाजन रोकना चाहते हैं।

कीमतोंपर कंट्रोल

वस्तुओंकी योग्य कीमत तय करनेके पहले उद्योग किस प्रकारका है यह देखना चाहिये। छोटे और बड़े पैमाने पर चलनेवाले उद्योगोंको एकही दृष्टिसे देखना गलत होगा। सभी वस्तुओंपर कंट्रोल करना इष्ट नहीं है। यदि कोई व्यवसाय समाज-हित-विरोधी है तो वह केंद्रित नहीं होना चाहिये। इस प्रकार केंद्रित उद्योग चलाना या नहीं इसका निकष है उसकी समाज-हित-विरोधकी प्रवृत्ति।

जैसा कि हम पहले कह आये हैं, जिन व्यवसायोंमें एकाधिकार होना जरूरी है और जिनमें बहुत अधिक पूंजी लगती हो, वे केंद्रित ही रहें तो अच्छा। उदाहरणार्थ कोयलेकी खदानें, रेल्वे और तत्सम व्यवसाय इनमें क्या पूंजी, क्या मजदूर और क्या अन्य चीजें सभी बहुत बडे पैमानेपर लगती हैं। ऐसे उद्योग कभी व्यक्तियोंके हाथोंमें नहीं सौंपने चाहिये; बल्कि उन्हें सरकारी तौर परही चलाना चाहिये।

उद्योगोंमें लोकशाही :

प्रजातंत्र-शासित देशमें समाज विघातक प्रवृत्तियोंको स्थान नहीं होना चाहिये। कपड़े की मिलें प्रजातंत्रके उसूलोंके खिलाफ हैं। वहां मिलका मालिक बादशाह होता है और हजारों आदमियोंको उसके इशारोंपर चलना पड़ता है। इस राजकीय दृष्टिसे भी इस तरह के केंद्रित उद्योग अनिष्ट हैं।

देशकी समाज-व्यवस्था सहयोगपर अधिष्ठित होनी चाहिये। स्पर्धा याने जंगलका कायदा। वह हम हमारे देशमें रूढ़ नहीं करना चाहते। हम तो चाहते हैं कि सहयोग शुरू करें, स्पर्धाको हटावें। और केवल कीमतोंपर नियंत्रण रखकर हम स्पर्धा नहीं हटा सकते।

रोगकी परीक्षाके बाद जिस प्रकार वैद्य रोगीको दवाके बतौर ज़हर थोडी मात्रामें खिलाना या नहीं यह तय करता है उसी प्रकार व्यवसायकी अच्छी तरह जांच कर लेने पर ही यह तय होना चाहिये कि उसे केंद्रित करना या नहीं।

जब हम केंद्रित व्यवसायोंको त्याज्य करार देते हैं तब हम यंत्रोंके भी विरुद्ध हैं ऐसा नहीं मानना चाहिये। हम चाहते हैं कि मनुष्य यंत्रका गुलाम न बने। जब मनुष्यका यंत्रपर नियंत्रण नहीं रह पाता तब हिंसा निर्माण होती है।

हिंसा और शांति :

अर्थशास्त्रकी क्रमिक पुस्तकोंमें मांग और पूर्तिके संबंधमें बहुत कुछ लिखा रहता है, पर प्रत्यक्ष व्यवहारमें इनका कोई अस्तित्व ही नहीं दिखाई देता। यंत्रसे अधिकसे अधिक उत्पादन कर लेनेपर ही वह यंत्र रखना पुसा सकता है। उदाहरणार्थ एक जूतेका कारखानदार, यह जानते हुए भी कि केवल ३०० जोडी जूतोंकी ही मांग है, ५०० जोडी जूते तैयार करता है क्योंकि उनका बनवाईका खर्च कम पड़ता है। वह अपने मुनाफेको मद्देनज़र रखकर, उत्पादन खर्च कमसे कम रखनेकी कोशिशमें, अधिक जोडी जूते बना डालता है। मांगकी बनिस्बत ज्यादा जूते बनानेके पश्चात वह उन्हें खपानेकी फ़िक्रमें पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि उपर्युक्त कारखानेवाला अर्थशास्त्रके सिद्धांतोंके अनुसार नहीं चलता

लेकिन अपनी मशीनकी ताक़तके अनुसार चलता है। इस प्रकार अतिरिक्त पैदावारकी खपतके लिये बाज़ार ढूंढने और ग्राहक प्राप्त करने के लिये लडाइयां शुरू कर दी जाती हैं। अर्थात् पहले हम उत्पादन कर बैठते हैं और बादमें संगीनकी सहायतासे उसे खपानेकी कोशिश शुरू करते हैं। इसपर से यह स्पष्ट है कि लड़ाइयोंकी जड़ केंद्रित उद्योग ही हैं। और इसलिये उनपर कुछ विवेकपूर्ण प्रतिबंध लगाने ज़रूरी है।

चमड़ा पकाने सरीखे उद्योगोंमें कुछ प्रक्रियाएं ऐसी हैं जो बड़े पैमानेपर करनी पड़ती हैं। ऐसे मौकोंपर बड़े पैमानोंका उपयोग ज़रूर करना चाहिये, पर किसी व्यक्तिकी हुकूमतके नीचे नहीं। यदि क्रोमका चमडा बनवाना हो तो उसे विविध उद्देश्योंकी सहकारी समितिके मार्फत चमारको लागत कीमतपर चमड़ा देनेकी दृष्टिसे बनवाना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य कई उद्योग ऐसे हैं जो व्यक्तिगत रूपसे या छोटे पैमाने पर नहीं किये जा सकते। उदाहरणार्थ १६०० डिग्री ऊष्णतामान देनेवाली भट्टी तैयार करनी हो तो उसके लिये काफी पैसा लगेगा और शायद बिजलीकी भी ज़रूरत पडेगी। हम अपनी क्रियाओंके लिये बिजली और अन्य शक्तिके साधन भी इस्तेमाल कर सकते हैं, सिर्फ उनमें मुनाफा कमानेकी प्रवृत्ति नहीं चाहिये। उन्हे समाजके शोषणका एक ज़रिया नहीं बनने देना चाहिये

अध्याय ८

सरकारके कर्तव्य

जैसा कि पहले दिखाया गया है मानव समाजकी हरएक प्रवृत्तिके दो दृष्टिकोण हुआ करते हैं—दीर्घ दृष्टि वाले और लघु दृष्टिवाले। हरएक व्यक्ति यही चाहता है कि उसे कार्य का फल तुरंत मिले। उसकी दिलचस्पी ऐसे किसी कार्य में नहीं रहती जिसके द्वारा उसके बाद आनेवाले लोगोंका लाभ होगा। वह निकट भविष्यके कम लाभसे भी संतुष्ट होगा, पर सुदूर भविष्यमें मिलनेवाले बड़े लाभवाले काम करने को तैयार न होगा। इसलिये संपूर्ण मानव समाजकी भलाईकी दृष्टिसे आवश्यक हो जाता है कि कुछ लोगोंके जिम्मे ऐसी बातोंपर विचार करनेका और उनपर अमल करनेका काम दिया जाय जिनका लाभ टिकाऊ पर अधिक दिनोंके बाद मिलनेवाला हो। राष्ट्रीय सरकार का यही तो काम है।

दूसरी बात यह भी है कि कुछ आवश्यक कार्य करना एक मामूली नागरिक के बूतेके बाहर होता है। इसलिये ऐसे सब कार्य जिनमें कार्यकर्ता और साधन इफ़रातमें होना ज़रूरी हैं, सरकारके जिम्मे पड़ते हैं। अनुसंधान, प्रयोग और समाचार वितरणका कार्य अकेला किसान या कारीगर नहीं कर सकता। वह उसकी ताक़त के बाहर का काम है।

जनताका सारा जोश, बुद्धि और साधन जो अबतक कारखानोंमें बनी चीज़ों की उन्नति करनेमें व्यय हुए हैं, अब ग्रामउद्योगोंके आधारपर ग्रामोंको स्वावलंबी बनाने की ओर लगाये जायँ तो अधिक उपयुक्त होगा। यदि पूरा प्रयत्न किया जाय तो ग्रामीणोंके सामने आनेवाली तमाम अड़चनें यथाशीघ्र हटाई जा सकती हैं।

सिंचाई :

तमाम ग्रामोंमें सिंचाईका प्रबंध होना चाहिये। इसपर जितना ज़ोर दिया जाय उतना कम ही है। इसी पर खेतीकी सारी दारोमदार रहती है। सिंचाईकी

व्यवस्था विना खेती याने एक सट्टासा हो जाती है । इसलिये कुएं खुदवानेकी, तालाव खुदवानेकी और साफ करानेकी और नहरें खुदवानेकी एक बाकायदा मुहीम शुरू कर देना निहायत जरूरी है । आज चावल और आटेकी मिलोंमें जो इंजन चल रहे हैं उन्हें हथियाकर सरकारको चाहिये कि वे कुओंका पानी उठानेमें लगाये जायँ । पानीका अच्छा इंतजाम रहे विना खादकी कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती । क्योंकि पानीके विना खाद नुकसान पहुंचाता है ।

ज़मीनकी व्यवस्था :

काश्तकी ज़मीनका प्रमाण और उसकी किस्म सुधारनी चाहिये । किस्म सुधारनेके लिये ज़मीनका कटाव रोकना चाहिये और उसमें यदि कहीं पानी जमा रहता हो तो उसे कहीं मेडें फोडकर और दूसरी आवश्यक जगहोंपर नयी मेडें खडीकर निकाल देना चाहिये । अंतोतोगत्वा ज़मीनका उपज़ाऊपन ही असली जड़ है जिसपर क्या आदमी और क्या जानवर सभीका पोषण टिका हुआ है । यदि ज़मीनकी किस्म गिर जाती है तो उसमें पैदा होनेवाला अन्न भी कम पोषण तत्वयुक्त होगा और वहांके आदमी तथा मवेशी दोनोंका स्वास्थ्य गिरा हुआ होगा । इसी कारणसे पोषक शास्त्रज्ञ स्वास्थ्य और कृषिका घनिष्ट संबंध जोडते हैं ।

विहार और अन्य कई जगहोंपर अधिक भावोंकी लालच दिखाकर लोगोंको खुराककी चीजोंकी काश्त छोडकर गन्ना, तंबाखू और लंबे रेशेवाली कपासकी खेती करनेके लिये उद्युक्त किया गया है । उसी प्रकार मलवारमें भी पहले धानकी खेती होनेवाले वड़े वड़े हिस्सोंमें अब केवल नारियलके ही झाड दिखाई देते हैं । इनके नारियल तेलकी मिलोंको वेच दिये जाते हैं और वहां उनके तेलसे साबुन बनता है । उन ज़मीनोंके मालिकोंको अब पहले जैसा अपने खेतमें पका हाथ कुटा चावल नहीं मिलता । उन्हें ब्राझीलसे आनेवाले सफेद चावलपर अवलंबित रहना पड़ता है और यही कारण है कि उनका स्वास्थ्य दिनोंदिन गिर रहा है । सरकारका यह कर्तव्य है कि वह देखे कि प्राप्य ज़मीनका वुनियादी चीज़ोंकी काश्त करनेके लिये प्रथम उपयोग किया जाय । खुराक और कपड़ा इनकी ज़रूरतें पूरी होनेके वाद यदि अतिरिक्त ज़मीन वच रहती है तो उसमें भले ही तिजारती फसलें वोई जा सकती हैं । ऊपर जो उदाहरण दिये हैं उसपरसे सरकारी कर्तव्यभ्रष्टता स्पष्ट

दिखाई देती है, क्योंकि ऐसे समयमें जब कि जनता खुराकके लिये मुंहताज है, उसने चावलकी काश्त होनेवाली ज़मीनको मानों साबुन की खेतीवाली बनने दिया।

किस ज़मीनमें किस चीज़ की काश्त करनी चाहिये यह योजनापूर्वक निश्चित किया जाना चाहिये और हरएक चीज़की काश्तका लाइसेंस दिया जाना चाहिये।

अनुसंधान :

खेतीकी सारी खोजें इस दृष्टिकोणसे की जानी चाहिये जिनसे अन्न और ग्रामोद्योगोंके लिये आवश्यक कच्चे मालके उत्पादनमें तरक्की हो। तंबाखू जैसी व्यापारिक फसलें और फॅक्ट्रियोंके लिये मोटे छिलकेके गन्ने और लंबे रेशेकी कपास आदिके उपर संशोधन न किया जाय।

किरायेकी दरें और यातायातमें प्रथम स्थान :

इस समय प्रायॉरिटी और किरायोंकी पक्षपाती दरें फैक्ट्रीके बने मालके लिये दी जाती हैं। ग्रामोद्योगकी बनी चीज़ें, जैसे हाथका बना कागज, ग्रामोद्योग का सरंजाम, वनस्पतिजन्य तेल जलानेवाली लालटेनें आदिको तो रेलपर कोई पूछता ही नहीं। इससे इन उद्योगोंकी हालत दिनपर दिन खराब होती जाती है और उन्हें बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। रेल्वेकी इस नीतिसे लड़ाईके ज़मानेमें जिनका विकास संभव था, ऐसे कई ग्रामोद्योगोंको काफी धक्का पहुंचा है। अन्य सब बातोंके साथही साथ इस रेलके मामलेमें भी दृष्टिकोण बदलना होगा और ग्रामोद्योगोंकी भलाई ध्यानमें रखकर नीति बनानी होगी। ग्रामोद्योगोंकी बनी वस्तुओंपर चुंगी और म्युनिसिपल टॅक्स आदि भी नहीं लगने चाहिये।

पशुओंकी नस्ल सुधार :

पशुओंकी नस्ल सुधारनेकी विस्तृत योजना सरकारको बनानी चाहिये और काम शुरू कर देना चाहिये। यदि किसी सूबेमें किसी खास किस्मकी उपयुक्त-नस्ल हो तो उसे संरक्षण देना चाहिये और उसमें उन्नति करनेकी कोशिश करनी चाहिये। जहां ज़रूरत हो वहां एक अच्छा सांड़ पैसा देकर भी रखना चाहिये। सामान्यतः यह सब काम गोसेवा संघ, वर्धा, मध्यप्रांत की नीतिके अनुसार चले।

रास्ते, वाहन आदि :

ग्रामोंमें मोटरोंके लिये जो सड़कें हों वे डामरकी होनी चाहिये और उनके बनानेका खर्चा मोटर मालिकोंको सहना चाहिये। मोटरके लाइसेंस और टॅक्स और पेट्रोल टॅक्स इस हिसाबसे लगाने चाहिये जिससे ऐसी सड़कें बनानेका और उनकी मरम्मत का सारा खर्चा मोटर मालिकोंपर ही पड़े। कच्ची सड़कोंपर मोटरोंको मुमानियत होनी चाहिये। कभी खास इजाजतसेही वे उन सड़कोंपर जा सकेंगी और वह भी इस प्रतिबंधपर कि उनकी गति फी घंटा ५ मीलसे अधिक न हो।

सरकारको अपनी जंगल संबंधी नीतिमें आमूलाग्र फ़र्क़ करना पड़ेगा। जंगलोंकी व्यवस्था आमदनीको मद्देनजर रखकर नहीं बल्कि लोगोंकी जरूरियातों को ख्यालमें रखकर करनी चाहिये। जंगलकी पैदावार जैसे इमारती लकडी, चपड़ा वगैरह इस्तेमाल किये जानेकी हालतमें लोगोंको मिलना चाहिये। इमारती लकडी जंगलमेंही पक्की होने देनी चाहिये। जंगलके आसपासके ग्रामीणोंकी जरूरतोंको देखकर उस जंगलकी नीति तय करनी चाहिये। आम तौरसे जंगलके दो वर्ग करने चाहिये। (१) दूर दृष्टिसे लोगोंको इमारती लकडी देनेवाले और (२) ईंधन और घास मुफ्त या नाममात्र कीमतपर देनेवाले। ताड गुड, कुम्हार काम, हाथ कागज़का काम आदि कई ग्रामोद्योग ऐसे हैं जो उन्हें सस्ता ईंधन या घास मिले तो ही पनप सकते हैं।

शिक्षण केंद्र :

सूबेका (अच्छा हो कि भाषाके हिसाबसे) एक शिक्षणकेंद्र होना चाहिये जो नीचे दिये हुए कार्य करेः-

१. जिलोंके प्रदर्शन केंद्रोंके सहयोगसे ऐसे ग्रामोद्योगोंकी कला और पद्धतिमें संशोधन करे जो कि उस प्रांतमें हो सकते हों।

२. ग्रामोद्योगोंपर स्थानीय भाषाओंमें साहित्य तैयार करे

३. ग्रामोद्योग प्रदर्शनियां भरायें

४. एक सरंजाम कार्यालय चलायें जहां गांवोंमें न बन सकनेवाले सरंजाम जैसे बैलसे चलनेवाली आटा चक्की, धान छीलने की मशीन, चीनी बनानेका यंत्र, कागज़के लिये बीटर, डायजेस्टर, कॅलेंडर, स्क्रू प्रेस, फिल्टर प्रेस आदि बनाया जा सके

५. ऐसे ग्राम सेवकोको शिक्षा दे जो ज़िलेके प्रदर्शन केंद्रोंमें या सहयोग समितियोंमें काम कर सकें ।

अध्याय ९

जीवन शिक्षण

सब जगह घूम फिराकर अंतमें हम इसी नतीजेपर पहुंचते हैं कि सब सवाल शिक्षणसे संबंधित रहते हैं। यदि हम लोगोंको एक सर्व सामान्य दृष्टि कोणसे जीवनकी ओर देखनेका शिक्षण दें तो हम सारी दिक्कतोंका हल ढूंढ सकेंगे। शिक्षण एक ऐसी मास्टर कूंजी है जिससे जीवनके हर एक दालनका ताला खोला जा सकता है।

शिक्षणका अर्थ :

यदि शिक्षण देना याने मनुष्यको जीवनके योग्य बनाना है—सुयोग्य नागरिक, सुयोग्य पति और सुयोग्य पिता बनाना है–तो उस शिक्षण की क्रिया मनुष्यके जन्म से उसके मरते तक जारी ही रहती है। जीवनमें कैसे भी उल्टे सीधे मौके आवें तो भी मनुष्यको बिचकना नहीं चाहिये। पर यदि शिक्षणसे हम किसी खास परिस्थितिसे ही लोहा लेना सीखें, तो उसके अलावा कोई दूसरी परिस्थितिका सामना करते समय हम घबरा जायंगे। शिक्षण याने केवल तवारीख रटकर मनको संकुचित बनाना नहीं है, बल्कि एक विशिष्ट जीवन-दृष्टि प्राप्त करना है।

किसीभी शिक्षण पद्धतिके पीछे उसका अपना तत्वज्ञान होना चाहिये और उससे मनुष्यका पूर्ण विकास होना चाहिये। इसलिये शिक्षणकी जिम्मेवारी याने एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी है और उसमें काफी खतरे रहते हैं; इसलिये पूर्ण विचार और पूरी तैयारी किये बिना कोईभी योजना नहीं स्वीकार करनी चाहिये।

बदनसीबीसे आमतौरसे लिखना, पढ़ना आना यानेही शिक्षित होना ऐसा माना जाता है। इससे अधिक विपर्यस्त दूसरी कल्पनाही नहीं हो सकती। लिखना, पढ़ना संस्कृति बनानेके ज़रिये हैं सही, पर वेही एक मात्र ज़रिये हैं ऐसा नहीं हैं और न वे ज़रिये सबसे ज्यादा महत्वके ही हैं।

ध्येयपूर्ण शिक्षण :

क़रीब क़रीब सभी देशोंकी शिक्षण पद्धति किसी खास ध्येयपूर्तिकी दृष्टिसे निश्चित की जाती है। पूंजीवादी देशोंमें बड़े बड़े उद्योगपति शिक्षण पद्धतिसे उन्हें आवश्यक व्यवस्थापक और कार्यकर्ता प्राप्त करनेकी ख्वाहिश रखते हैं। समाजवादी देशोंमें शिक्षण पद्धतिसे भौतिक उत्पादन बढ़ानेकी कोशिश की जाती है। फौजी प्रवृत्तिवाले देशोंमें शिक्षण याने लोगोंमें संकुचित देश प्रेम निर्माण करनेका ज़रिया बना दिया जाता है।

पूरबकी पद्धति :

हमारे देशकी पुरानी शिक्षण पद्धति विद्यार्थीको जीवन कलहमें टिके रहना सिखाया जाता था। विद्यार्थी अपना गुरु चुन लेता और उसीके साथ दिन रात रहकर अपने गुरूकी विद्या अपना लेता था। यह केवल आध्यात्मिक बातोंही के लिये नहीं बल्कि जीवन के हर पहलूके लिये लागू था। जिस प्रकार कोई बाप अपने बच्चेकी परवरिश करना अपना कोई पेशा नहीं समझता उसी प्रकार उस समयके गुरुभी शिक्षण देना अपना पेशा नहीं मानते थे। वे तो अपना संयत जीवनक्रम चलाते रहते, और उसीपरसे उनका जीवनका दृष्टीकोण स्पष्ट हो जाता था, और विद्यार्थी जो कुछ सीखना चाहते या सीख सकते थे वह उनके नित्य जीवनक्रमसे आपही आप सीख लेते। जब येशू ख्रिस्तने अपने चेले चुने तब उन्होंने उन्हें सिर्फ यही कहा कि मेरा अनुकरण करो। उन्होंने कोई पाठ्य-पुस्तकोंकी सूचि अपने चेलोंको नहीं थमाई। उन्हें अपने गुरुका अनुकरण करना पड़ता था। यह है हमारी पूरबकी पद्धति।

सच्ची आर्थिक कीमत :

पाश्चिमी लोगोंके संपर्कमें आनेसे हम सुवर्णके पुजारी बन गये। अब सांस्कृतिक मूल्योंकी जगह रुपये, आने, पाई आगये हैं। अब हम मानवको भूल-कर सोना या पैसेका ख्याल अधिक रखने लगे हैं। पहलेका ब्राम्हणी पद्धतिका मूल्यांकन जाकर अब पाश्चिमका बनियाई मूल्यांकन आगया है। पहले ब्राम्हण का आदर इसलिये नहीं होता था क्योंकि उसके पास बहुत पैसा होता था, बल्कि इसलिये होता था क्योंकि वह सदा निरपेक्ष भावसे लोगोंकी सेवा करनेके लिये तत्पर

रहता था । यदि किसी शिक्षण पध्दतिमें आवश्यक बातोंको पहला स्थान नहीं दिया जाता तो वह हमारे कामकी नहीं । जनसाधारणको शिक्षित करनेका मतलब है उनमें सच्चे आर्थिक, सामाजिक और सांपत्तिक मूल्योंको समझनेकी क्षमता निर्माण करना ।

जीवनके विभिन्न पहलू :

मनुष्य एक पेचीदा जीव है । उसके अलग अलग हिस्से नहीं किये जा सकते और अलग अलग हिस्सेका अलग अलग विकास नहीं किया जा सकता । जो शिक्षण पध्दति केवल बौध्दिक विकासका ही ख्याल करती है और शारीरिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकासकी ओर ध्यान नहीं देती वह राक्षस पैदा करती है । यदि हमें सच्ची शिक्षा देनी है तो हमें इन सारी बातोंके विकासकी ओर ध्यान देना चाहिए । हमें मनुष्यका शारीरिक, सामाजिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास करना है । उसे कोई एक व्यवसाय सीखना चाहिये, समाजके एक घटकके तौरपर अपना जीवन कैसे बिताना इसका उसे ज्ञान होना चाहिये और प्रसंगोंका ठीक ठीक मूल्यांकन कर सकनेकी क्षमता उसमें आनी चाहिये । यदि ये सब बातें हमें नहीं कर सकते हैं तो हमारा शिक्षण बेकार है ।

हमारी कोईभी क्रिया ऐसी नहीं है जिसकी हमपर कोई आमिट छाप नहीं पडती । हमारा काम, हमारे खेल, हमारे मनोरंजनके साधन और हमारा आराम इन सबकी खूब सोच विचारके बाद योजना करनी चाहिये तभी उनका समाजपर अच्छा असर पड़ेगा । किसी कामकी ट्रेनिंगमेंही काम करनेवालेके जीवनका बहुत सारा हिस्सा व्यतीत होता है । पर हम हमारा बहुत सारा काम केवल अपनी आर्थिक उलझनोंमेंही व्यतीत करते हैं । यदि ऐसी व्यवस्था की जाय कि चीज़ोंका उत्पादन करते करते हमारी कोई शक्तियोंका विकास भी होता रहे और जीवन अधिक समृद्ध बनता जाय तो कितना अच्छा होगा । योग्य काम करते करते राष्ट्रको थकावट नहीं महसूस होगी, पर वह बनता रहेगा । कामका मकसद यह चाहिये कि हम हमारे जीवनके ध्येयको कार्यान्वित करें । केवल आडंबरयुक्त पूजा याने सच्चा धर्म नहीं है । उसका हमारी हर एक कृतिपर, हमारे जीवनके हर एक क्षण पर असर दिखाई देना चाहिये और

यदि ऐसा नहीं होता है तो वह धर्म बेकार है। कामके परिच्छेदमें हम देख चुके हैं कि किस प्रकार कामके हिस्से पड़ते हैं और किस प्रकार कामकी बदौलत व्यक्तिकी और समूचे समाजकी उन्नति होती रहती है। यदि सयानोंकी उन्नतिमें काम इतना कारगर हो सकता है, तो हम बच्चोंके विकास के लिये उसका बखूबी उपयोग कर सकते हैं।

हमें अपनी सारी शक्ति ग्रामोंपर केंद्रित करनी है। कुछ समयके लिये हम यदि विश्वविद्यालयीन शिक्षण बंद भी कर दें तो उस राष्ट्रका कोई नुकसान न होगा। आज तो हालत यह है कि हमारे पास जरूरतसे ज्यादह ग्रेजुएट मौजूद हैं। इसलिये उनके कारण हमारे सामने बेकारीकी समस्या आ खड़ी हुई है, क्योंकि हमें जिस किस्मकी शिक्षा पाये हुए आदमी चाहिये उस किस्मकी शिक्षा उन्हें नहीं मिली है। अन्यथा उनका कोई न कोई उपयोग कर लेना मुश्किल न होता। हमारा ध्येय यह होना चाहिये कि हमारे ग्रामीण अधिक उपयुक्त और कार्यक्षम हों। बाहरी ऊपरकी जानकारी उनमें ठूंस ठूंसकर भरनेकी जरूरत नहीं। रेडियो और सिनेमा ग्रामीणोंकी शिक्षामें सहायक भलेही हों, पर वे उसके प्रमुख साधन नहीं बन सकते। उनपर खर्च की जानेवाली रकम प्रमाण के बाहर है। शिक्षाका कार्य ग्राममेंसे स्वयम् उत्स्फूर्त होना चाहिये, वह उस पर बाहरसे लादा न जाना चाहिये। बाहरसे हम कुछभी लादनेकी कोशिश करेंगे तो उसे टिकाये रखनेके लिये कुछतोभी कृत्रिम आधार निर्माण करने पड़ेंगे। पर जो चीज़ आपही आप अंदर पैदा होगी उससे सच्ची संस्कृति निर्माण होगी जिससे मनुष्य मनुष्यसे और गांव गांवसे बंध जायगा और अंततोगत्वा सारा देश अच्छी तरहसे एक सूत्रमें बंध जायगा।

इसके लिये संगठन निर्माण करनेपर ज़ोर देनेकी ज़रूरत नहीं। यदि हम संगठनपरही ज़ोर देते हैं तो हम व्यक्तिगत असरोंको ख्यालमें नहीं लेते हैं जिससे संगठन कई बार भाररूप और खर्चीला हो जाता है। शिक्षणमें भी केंद्रीकरण करनेसे सुदूरस्थित लोगोंका बहुत ज्यादा नियंत्रण आजाता है और उससे सब जगह एकही किस्मका अनुशासन और एकसी पद्धतियां आजाती हैं जो सच्ची शिक्षाके लिये मारक हैं। ग्रामके शिक्षकको अपने पड़ोसियोंको

देखभालके नीचे काम करना ज्यादा अच्छा। उस दृष्टिसे हरएक गांववाले अपनी अपनी शिक्षाका खर्चा पुरानी पद्धतिके अनुसार पाठशालाओंको जमीनें दे देकर निभायें तो बहुत अच्छा हो। इस प्रकार चलनेवाली पाठशालाओंके निरिक्षण उस स्थानके कुछ आदमी स्वयम् करें तो बहुत अच्छा होगा, क्योंकि उसकी व्यवस्थाभी स्थानिक लोगोंके हाथोंमेंही रहेगी। आजकी पद्धतिमें सालमें एक बार कभी तो भी इन्स्पेक्टर आकर मुआयना कर जाता है और उस समय यदि शिक्षक उसे संतुष्ट कर सका तो फिर बाकी समय वह ढील दे देता है। इससे न तो प्रगतिही होती है और न एकसा काम ही होता है। गांवकी हरएक पाठशाला याने उसकी संस्कृतिका केंद्र होना चाहिये और उसीके जरिये गांवका बाहरी दुनियासे संबंध आना चाहिये। इस प्रकार की व्यवस्थामें एकही खतरा रहता है, और वह यह है कि शिक्षक सामाजिक कार्यक्रमोंको ज्यादा महत्व देकर उनमेंही अपना सारा समय व्यतीत कर दें और बच्चोंकी शिक्षाके असली कर्तव्यकी उपेक्षा करें। उपयुक्त सामाजिक हलचल याने एक शिक्षाके साथही साथ की जानेवाली चीज है, पाठशालाका मुख्य ध्येय नहीं है। मनुष्य स्वभावमें और अपने खुदमें श्रद्धा रखकर अपने ध्येयकी ओर हमें अग्रसर होना चाहिये। संभव है कि छोटी मोटी बिगतोंमें मतभेद हो, पर इतनी बात तय है कि हम सच्ची संस्कृति निर्माण करने, मूल्यांकनके सच्चे पैमाने कायम करने और ऊपर ऊपरसे दिखाई देनेवाली विभिन्नताके बावजूद सच्ची एकता निर्माण करनेका ध्येय प्राप्त कर लेंगे।

सुझाई हुई योजना :

इधर कई दिनोंसे सच्ची शिक्षा किस प्रकार देनी चाहिये इसके बारेमें काफी चर्चा चली हुई है। गांधीजीकी सूचना है कि शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिये। उन्होंने लिखा है, "शिक्षासे मेरा मतलब है बच्चेकी या मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और नैतिक उन्नति। केवल लिखपढ लेना याने शिक्षा नहीं है और न उसका श्रीगणेशही है। किसीभी पुरुष या स्त्रीको शिक्षित बनानेका वह केवल एक जरियाही है। केवल लिखपढ सकना यह कोई शिक्षा नहीं है। इसलिये मैं बच्चेकी शिक्षाकी शुरुआत उसे कोई उपयुक्त उद्योग सिखाकर करूंगा ताकि शिक्षाकी शुरुआतसेही वह कोई न कोई नई चीज या चीजें निर्माण कर सके। इस प्रकार सारी पाठशालाएं स्वावलंबी बन सकती हैं, बशर्ते सरकार इन पाठशालाओंमें बनी चीजें खरीद ले"।

"मेरी ऐसी धारणा है कि इस पद्धतिकी शिक्षामें मन और आत्माका अधिकसे अधिक विकास हो सकता है। सिर्फ शर्त यही है कि हर एक उद्योग शास्त्रीय ढंगसे सिखाया जाय न कि यांत्रिक ढंगसे जैसा आजकल किया जाता है। अर्थात् विद्यार्थीको हरएक चीज़का कार्यकारण भाव समझाया जाना चाहिये। मैं यह बात कुछ निश्चयपूर्वक इसलिये कह सकता हूं क्योंकि उसके पीछे मेरा अनुभव है। जहां कहां कार्यकर्ताओंको कताई सिखाई जाती है वहां यह पद्धति करीब करीब पूर्ण रूपसे अमलमें लाई जा रही है। मैंने स्वयम् चप्पल बनाना और सूत कातना इसी पद्धतिसे सिखाया है और उसका नतीजा अच्छा निकला है। इस पद्धतिमें इतिहास और भूगोलका बहिष्कार नहीं किया जाता; पर मेरा अपना अनुभव है कि इस किस्मका सामान्य ज्ञान मुंह जबानी ही अच्छी तरह दिया जा सकता है। इस पद्धतिसे जो ज्ञान होता है वह पढ़ने और लिखनेके ज्ञानसे करीब दसगुना होता है। बच्चेको अक्षर-ज्ञान तभी कराया जाय जब उसमें अच्छेबुरेकी भावना निमार्ण हो। यह एक क्रांतिकारी योजना है इसमें कोई शक नहीं, इस पद्धतिमें मिहनतकी बहुत बचत होती है और एक सालमें इतना ज्ञान हासिल होता है जितना दूसरे तरीकेसे हासिल करनेमें काफी समय लग जायगा। इसका मतलब हुआ समयमें, पैसेमें और मिहनत आदिमें सबमेंही बचत होती है। अर्थात् उद्योग सीखते सीखतेही वह गणित भी सीखता है।

विद्यार्थीकी प्रायमरी शिक्षाको मैं बहुत महत्व देता हूं और मैं मानता हूं कि वह आजकी अंग्रेजी छोडकरके मॅट्रिकके समकक्ष होनी चाहिये। आज यदि कालिजोंमें जानेवाले विद्यार्थी अपना सारा ज्ञान भूल जायँ तो इन कुछ लाख विद्यार्थियोंकी स्मृति नष्ट होनेसे देशका उतना नुकसान न होगा जितना कि अपने देशकी तीस करोड़ जनताके अज्ञानरूपी सागरमें डूबे रहनेसे हुआ है और हो रहा है। करोड़ों देहातियोंके अज्ञानका कोई ठिकाना नहीं है।"

बच्चोंकी प्रारंभिक शिक्षा कभी स्वावलंबी नहीं हो सकेगी। वे जो चीजें निर्माण करेंगे उन्हें पैसे देकर खरीदनेके लिये कोई राजी न होगा। यदि उन्हें सरकार खरीद ले तो हमारा नुकसान सरकारने उठाया इतनाही उसका

मतलब होगा। उस हालतमें शिक्षा स्वावलंबी हुई मानना याने आत्मवंचनाही होगी। जब गांधीजी कहते हैं कि शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिये तब उसका यह मतलब हर्गिज़ नहीं है कि हर सालकी विद्यार्थीकी कमाईसे उसकी शिक्षाका खर्च निभ जाय। यह तो बहुत संकुचित आर्थिक विचार हुआ, और वह कभी कामयाब नहीं हो सकता। उनका मतलब बहुत विशाल है। वे केवल विद्यार्थी द्वारा बनाई हुई चीज़ोंकी रुपया, आना, पाईमें ही कीमत नहीं कूतते बल्कि उसके सुयोग्य और सुशिक्षित नागरिक बननेकी हालतमें देशको जो लाभ होगा उसकाभी वे हिसाबमें लेते हैं। फ़िलहाल देहाती स्कूलमें लिखने, पढने और हिसाब किताब आदिकी जो कसरत कराई जाती है उसकी बुनियाद इतनी कमजोर होती है कि स्कूल छोडनेके कुछ ही साल बाद वह सब बिलकुल साफ हो जाता है और विद्यार्थी फिर अक्षरशत्रुसा बन जाता है। अर्थात् उसे पढानेमें जो समय, मिहनत और पैसा खर्च हुआ होता है वह बेकारसा हो जाता है। पर यदि वही समय और पैसा योग्य रीतिसे इस्तेमाल किया जाय तो कक्षामें जो चीज़ें बनेंगी वे संभव है कि हर सालका अपना खर्च न निकाल सकेंगी; पर पूरे सात सालकी शिक्षा कालमें वह कक्षा जो जो चीज़ें बनावेगी उनसे उसके शिक्षकोंका वेतन तो अवश्य निकलना चाहिये। पहले दो सालोंमें नुकसान रहेगा, बादके तीन साल संभव है कि बराबरीपर रहें, पर अंतके दो वर्षोंमें इतना मुनाफा होना चाहिये जिससे कि पहले दो वर्षोंका नुकसान पूरा हो जाय। क्षण भर के लिये हम इस नुकसान पूर्तिका विचार छोडभी दें तो भी, जैसा कि हम पहले भी बतला चुके हैं, एक सुयोग्य नागरिक तैयार करनेमें सरकारको यदि कुछ खर्च करना पडे तो वह उसका नुकसान नहीं गिना जायगा। यदि विद्यार्थियोंको रोजमर्रोकी आवश्यकताओंके उद्योग, उदाहरणार्थ सूत कताई, रंगाई बुनाई, दर्जीकाम, चटाई और टोकनी बनाना, कुम्हारकाम, मोची काम, बढई-गिरी, लुहारी, ठठेरी, हाथकागज बनाना, गुड बनाना, तेल पेराई, मधुमक्खी पालन आदि सिखाए जायँ तो उनका उत्पादन खपाना यह कोई बडी समस्या नहीं बन जावेगी। किसी कारीगर के पास काम सीखने के लिये यदि कोई उमेदवार रहता है तो शुरूसेही वह अपने खर्च जितनी कमाई नहीं कर सकता। उसको सिखानेमें शुरू शुरूमें कुछ न कुछ नुकसानहि होगा। थोडा सीख लेनेपर संभव है कि उसकी चीज़ें खप सकें। और उसके बादकी चीजोंमेंसे संभव है कि वह

अपनी पढ़ाईका पूरा खर्चा निकाल सके। इसलिये शुरूके सालोंकी शिक्षाके लिये सरकारको कुछ इंतजाम करना चाहिये या लोगोंको खास इसी कामके लिये कुछ जायदादें आदि, उदाहरणार्थ जमीन आदि, खास इसी कामके लिये सुरक्षित रखना चाहिये। पहले ऐसा होता रहा है, पर जबसे ब्रिटिशोंकी टैक्स लगानेकी पद्धति शुरू हुई हमारे देहाती स्कूल टूट गये। पर बच्चोंकी शिक्षाकी जिम्मेदारी तो हमेशा सरकारकी होनी चाहिये । आजकी हालतमें हमारे सामने जो आर्थिक समस्या खड़ी है वह राजनैतिक कारणोंसे है। वह कोई स्वाभाविक समस्या नहीं है। इसलिये उन राजनैतिक कारणों को हटाना चाहिये और ऐसा नहीं समझना चाहिये कि ये अड़चनें दुर्लंघ्य हैं । शिक्षक स्वयम् अच्छी तरहसे ट्रेन्ड हुआ होना चाहिये और उसे समुचित वेतन-मान लीजिये मासिक रु. २५ से शुरू कर-देना होगा। उसके स्कूलकी पढ़ाई के घंटे और सालभरका कार्यक्रम गांवके कार्यक्रमके अनुकूल रहे। जब फसल काटनेका मौसम रहता है या अन्य ऐसे ही कोई मौकोंपर जब कि खेतोंपर ज्यादह काम हो तब स्कूलकी छुट्टी रहे।

योजनाकी मोटी रूपरेषा :

इस बुनियादी शिक्षण पद्धतिमें, या जो आजकल वर्धा शिक्षण पध्दतिके नामसे जानी जाती है उसमें सात सालकी उम्रसे १४ साल तक लड़कों और लड़कियोंको अनिवार्य रूपसे पढ़ानेकी कल्पना है। शिक्षाका ज़रिया कोई उद्योग रहेगा जिसके मार्फत सारे विषय पढ़ाये जावेंगे। बच्चेका दैनंदिन जीवन, उद्योगसे किया हुआ समवाय, बच्चे के आसपासका प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण इनमें ऐसे मौके निर्माण हो सकते हैं जिनसे उसे विभिन्न विषयोंकी जानकारी कराई जा सके। हमारा ध्येय यह रहेगा कि हम केवल अंग्रेजीका ज्ञान छोड़कर और सब विषयोंमें विद्यार्थीको आजकी मैट्रिक के समकक्ष जानकारी दें। जब तक विद्यार्थीको चित्रकलाका कुछ ज्ञान नहीं होता तब तक उसे लिखना नहीं सिखाया जायगा। पढ़ना उसे पहले सिखाया जायगा। १२ सालकी उम्रके बाद विद्यार्थीको धंधेके तौरपर कोई भी उद्योग चुननेकी स्वतंत्रता रखी जा सकती है। इस शिक्षा पध्दति का यह मकसद कदापि नहीं है कि १४ वर्षकी उम्रके निष्णात कारीगर निर्माण करे, पर उस उम्रतक उसे काफी ट्रेनिंग मिली हुई होगी ताकि वह अपने धंधेमें पड़कर अपनी तमाम शक्तियोंका, अच्छा उपयोग कर सकेगा।

इस योजनाकी केंद्रित कल्पना यही है कि विद्यार्थीका बौद्धिक विकास किसी उद्योग या धंधेकी ट्रेनिंगके मार्फत हो। मौजूदा पद्धतिमें सामान्य शिक्षापर प्रथम जोर दिया जाता है, और बादमें उनकी बुनियादपर कोई धंधेकी जानकारी कराई जाती है। इसलिये जब हम बौध्दिक विकास पहले कर देते हैं तो हम एक तौरसे विद्यार्थीके हाथपैर बांध देते हैं और वह व्यवहार चतुर नहीं बनता। बचपनमें ही जो इंद्रियां बधिर बना दी गई हों उन्हें बादमें लाख कोशिशें करनेपर भी कार्यक्षम नहीं बनाया जा सकता। किसी प्रत्यक्ष अनुभवके सिवा दी हुई शिक्षा याने स्मरणशक्तिकी कसरत सी हो जाती है। उससे विद्यार्थीका व्यक्तिगत विकास नहीं होता।

परीक्षाएं :

इस योजनामें परीक्षाओंका बहुत सारा भार शिक्षकोंपर होगा, विद्यार्थियों-पर नहीं। चूंकि विद्यार्थीके २४ सो घंटोंके जीवनपर शिक्षक का नियंत्रण रहेगा इसलिये उसका हर एक विद्यार्थीके घरसे और उनके द्वारा गांवसे बहुत घनिष्ट संबंध रहेगा। उन घरोंकी और पूरे गांवकी हालत देखकर शिक्षकके काम का अंदाजा लगाया जा सकेगा।

स्त्रियोंका हिस्सा :

हमें बच्चेकी बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति अभिप्रेत है। शुरूमें बच्चा किसीभी चीज़का रूप या आकार ख्यालमें लेता है, फिर उसका रंग और उसकी गतियां ख्यालमें रखता है। और फिर वह चीज़ ऐसी क्यों है इसको समझनेकी कोशिस करता है। बादमें वह कोशिस करके देखता है कि वह अपनी इच्छा के अनुसार कोई चीज़ बना सकता है या नहीं। इसप्रकार वह खेलसे संशोधनकी ओर और संशोधनसे नव-निर्माण की ओर अग्रसर होता है। हमारी शिक्षा-पद्धतिमें इन तीनों परिस्थितियोंका पूरा उपयोग कर लेनेकी गुंजाइश होनी चाहिये तभी बच्चों की बुद्धिका पूरा विकास हो सकेगा। ऐसा कर सकनेके लिये शिक्षकको बच्चेकी मनोभूमिकामें समरस हो सकनेकी क्षमता चाहिये। स्वभावतः स्त्रियोंको बच्चोंकी पहली अवस्थासे समरस होनेकी क्षमता अधिक रहती है। हिंदुस्तानकी स्त्रियोंमें शिक्षाका अभाव होनेसे यहांकी शिक्षण पद्धतिका कोई कम नुकसान नहीं हुआ है। यहांकी न

तो माताएं अपने बच्चोंकी शिक्षाका भार उठा सकती हैं और न स्कूलोंमें शिक्षिका के तौरपर काम करनेके लिये ही स्त्रियां मिलती हैं। मेरी तो ऐसी राय है कि यदि हमें स्कूलोंको सुधारना है तो हमें सर्वप्रथम लड़कियोंको और नवयुवतियोंको शिक्षित करना चाहिये; क्योंकि वे ही भावी पीढियोंकी संरक्षिका हैं। वहांसे यदि हम शुरूआत नहीं करते हैं तो अकेले पुरुषों द्वारा संचालित कैसी भी अच्छी योजनाएं बेकार ही साबित होंगी, क्योंकि पुरुषोंका बच्चोंसे जो संबंध आता है वह उनकी प्रभाव पडने योग्य आयु बीतनेके बादही होता है। आठ सालसे नीचेके बच्चोंका हरएक देहाती स्कूल स्त्रियोंके हाथोंमें ही होना चाहिये। करीब करीब ऐसा नियम ही होना चाहिये कि चंद अपवादोंको छोडकर, ऐसे स्कूलोंमें किसी पुरुषकी नियुक्ति ही न हो।

बच्चोंके विकास की दूसरी अवस्थामें हमें ऐसे व्यक्ति चाहिये जो उनकी विचारशक्ति को चालना दे सकें और किसी भी घटनाका कार्यकारण भाव उन्हें समझा सकें। मुझे न्यूयॉर्क के एक लेबर-यूनियनके फेडरेशन द्वारा संचालित स्कूल देखनेका मौका मिला था। उस स्कूलके तमाम लोग एकत्रित रहते थे और विद्यार्थी भी खुराकी चीजें प्राप्त करने और अन्य घरेलू मामलोंमें हाथ बंटाते थे। उनकी अपनी निजी डेअरी थी। एक शिक्षकके जिम्मे वह कर दी गई थी और कुछ विद्यार्थी उसकी मददके लिये दे दिये गये थे। मैंने ११ सालके बच्चोंका एक 'आर्थिक क्लास' चलता हुआ देखा। उस दिनका विषय था 'गाय खरीदना'। एक १० सालका बच्चा क्लास ले रहा था और शिक्षक मेरे साथ एक पिछली बेंच पर बैठा था। उस बच्चेने—उसको हम हेनरी कहेंगे—क्लासको अपने शिक्षक (बिल) के साथ नज़दीकके बाज़ारमें गाय खरीदने के लिये जानेपर मिले हुये अनुभव सुनाये। क्लास इस किस्मसे चली। "आजकल हमारी गायोंसे हम लोगोंको पर्याप्त दूध नहीं मिलता, इसलिये मैं और बिल एक नीलाममें गाय खरीदनेके लिये गये"। एक विद्यार्थीने पूछा, "नीलाम ये क्या चीज़ है? ।" दूसरेने खुलासा किया कि नीलाम एक ऐसी दूकान है जिसमें की चीज़ों की कीमतें निश्चित नहीं होती। दूकानदार कोई एक चीज़ बेचनेके लिये बाहर निकालता है और उस चीज़की जिन्हें ज़रूरत होती है उनमेंसे सबसे ऊंची बोली बोलनेवालेको वह बेच देता है। इसके बाद 'बोली बोलने' के मानी समझाये गये।

फिर और एक विद्यार्थीने पूछा कि अलग अलग लोग अलगअलग बोली क्यों बोलते हैं। हेनरीने जवाब दिया, "हमने जो गाय खरीदी उसकी बोली ७५ डॉलरसे शुरू हुई और १२० डॉलर की बोलीपर नीलाम पूरा हो गया"। 'नीलाम पूरा होना' याने क्या, इसका मतलब समझानेके बाद हेनरीने कहा, "पहले आदमीने ७५ डॉलरकी बोली बोलनेके बाद दूसरे लोग बोली चढाते गये और बिलने १२० डॉलरकी बोली कर दी। उससे अधिक बोली न चढ सकी इसलिये वह बिलको बेच दी गई"। दूसरे एक विद्यार्थीने पूछा, "१२० डॉलरसे अधिक देनेके लिये और कोई क्यों न तैयार हुआ?" हेनरीने बतलाया कि नीलाम शुरू होनेसे पहले हर भावी खरीदारने उस गायके संबंधका पुराना रेकॉर्ड देख लिया था। उसमें उसने साल भरमें कितना दूध दिया, उसे कौनसी और कितनी खुराक खिलाई गई थी और दीगर खर्च कितना हुआ था इसका ज़िक्र था। इस परसे सालभरके उसके दूधकी क़ीमतमें उसका पूरे सालका खर्च निकल सकता है या नहीं इसका हिसाब लगाना आसान था। जब वह मर्यादा पहुंच गई तो लोगोंने बोली बढाना बंद कर दिया। इन विद्यार्थियोंने जो यह एक घंटा आपसी चर्चामें बिताया उससे उनका बौध्दिक विकास इतना होगया जितना कि ॲडम स्मिथ और मार्शलके अर्थशास्त्रपरके ग्रंथ रटने से भी होना संभव नहीं।

मौजूदा पध्दति मौलिक विचारक नहीं निर्माण कर सकती। हमारे विश्वविद्यालयके स्नातक भी अभी इस तीसरी दशातक नहीं पहुंच पाये हैं। इसीलिये तो हमारी प्रगति रुकी हुई है। जैसा कि हम पहलेही देख चुके हैं, हमें जो शिक्षा दी गई है वह हमें केवल क्लर्क बनानेकी दृष्टिसे दी गई है, और मौलिक विचारोंकी क्लर्कोंको कोई ज़रूरत नहीं। मौलिकताके लिये बहुत हदतक आत्मविश्वास चाहिये। और कुछ कर दिखाने की स्फूर्ति चाहिये। शिक्षकोंका कार्य सिर्फ इतनाही है कि वे नज़दीक खडे रहकर निरीक्षण करें और केवल सूचनाएं करें।

किसी भी धंधेकी ट्रेनिंग या शिक्षा, कलाका उससे कोई न कोई संबंध रखे बिना पूरी नहीं मानी जा सकती। कवींद्र रवींद्रनाथ टागोरने हमारी शिक्षाके इस पहलूकी ओर काफी ध्यान दिया है। किसी भी ग्रामीण पाठशालामें लोक गीत, संगीत और कलापर काफी ज़ोर रहना चाहिये। किसी उद्योगकी

बुनियाद पर और कलाको सहायक बनाकर यदि ऐसी पाठशालाएं चलाई जायँ तो उनके पाठ्यक्रम कितने भी आसान क्यों न हों, पर उनमें शिक्षा पाये हुए लोग शुद्ध नैतिक आचरण वाले और स्वाभिमानी बनेंगे। वे आराम तलबीके लिये विदेशियोंका लांगूल चालन न करेंगे, बल्कि सम्मान और आजादीके साथ सामान्य आदमियोंकी तरह रूखी सूखी रोटी खाने में ही संतोष मानेंगे। जब तक जनसाधारण को इस बुनियादपर हम खडा नहीं करते तबतक नवराष्ट्र निर्माण संभव नहीं। जिस किसी राष्ट्रकी जड़ें अपनी निजी संस्कृतिमें मजबूत नहीं हुई हैं, वह कभी भी दुनियामें अग्रसर नहीं हो सकता। केवल अनुकरण करने से हम कभी बड़े नहीं बन सकते। हमें दुनियाके साहित्य, कला और संगीत भांडारमें अपनी ऐसी कुछ देन देनी चाहिये।

अध्याय १० वां

सामाजिक जीवन

अबतक हमने मनुष्यके व्यक्तिगत दैनिक आर्थिक जीवनके निस्बतही चर्चा की है। इस अध्यायमें हम उसके सामाजिक जीवनके बारेमें चर्चा करेंगे। हमने यह देखा है कि मनुष्यका जीवन कुदरतका ही एक अंग है। उस दृष्टिसे मनुष्यका जीवन याने विश्वकी एक कला मात्र है। इसी दृष्टिकोण से हमारे दैनिक जीवनका भी परीक्षण करना चाहिये।

मनुष्यका व्यक्तिगत जीवन तो एक छोटीसी चीज़ है, पर उसका जब दूसरोंसे संबंध आता है तब उसको कई मर्यादाएं लग जाती हैं। मनुष्य चाहे जैसा वर्ताव नहीं कर सकता। उसके आचरण पर दूसरोंकी भलाईका अंकुश लगा रहता है। इसलिये किसी भी व्यक्ति की आदतें, उसका स्वास्थ्य और उसकी रहन सहन इनपर उसके आसपासके वातावरणकी छाप पड़े बगैर नहीं रहती।

इस बातको ख्यालमें रखकर लोगोंको सामाजिक जीवन कैसे बिताना चाहिये इसके हम कुछ सर्व सामान्य नियम बना सकते हैं। हिंदुस्तानमें बहुतसे लोग छोटी छोटी झोंपडियोंके बने गांवोंमें रहते हैं। इसलिये इस दृष्टिसे ग्रामीण जीवनका अभ्यास करना चाहिये।

इसकी एक मिसाल देंगे। मनुष्य अपने शरीरका क्षय रोकने के लिये, उत्साह और रोग प्रतिकारक शक्ति प्राप्त करनेके लिये खुराक खाता है। खुराकमेंसे शरीर अपने लिये आवश्यक तत्व ले लेता है और जो तत्व वह हज़म नहीं कर सकता उसे वह कुदरत को वापिस दे देता है। यह वापिस करनेकी क्रिया इस तरहसे करनी पड़ती है ताकि कुदरत उससे लाभ उठा सके और दूसरे मनुष्योंको कोई नुकसान न पहुंचे। इस तरहसे हर एक सवालके दो पहलू हैं और आगे के पृष्ठोंमें हम इन्हींपर विचार करेंगे।

इसलिये इस अध्यायमें हमें सफाई, स्वास्थ्य और मकानों के बारेमें किन किन मुद्दोंपर गौर करना चाहिये इसको हम सरसरी निगाहसे देख जावेंगे। और

उसके बाद गांवोंमें मनुष्योंका आपसी संबंध क्या होना चाहिये इसका विचार करेंगे, ताकि गांव एक नई विचार धाराकी संगठित इकाई बन जाय। ये इकाइयां स्वायत्त राज्यकी बुनियाद बनेंगी। यहींपर ग्रामोंको राज्यकी व्यवस्था और स्वायत्त शासनकी शिक्षा मिला करेगी। इसीलिये हमें इन ग्रामीण संगठनों पर काफ़ी ज़ोर देना चाहिये।

इस प्रकार जब ग्राम संगठित हो जावेंगे तब वे अपनी एक खास संस्कृति निर्माण करेंगे जो उस संगठनकी खासियत होगी, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार किसी व्यक्तिकी अपनी खासियत होती है। ग्रामीण जीवनकी इन बातोंके कारण हम स्थायित्वकी ओर अग्रसर होंगे। मनुष्यकी उम्र अधिकसे अधिक ७० सालकी होती है, पर ग्रामीण संस्कृतिपर अधिष्ठित यह संगठन स्थायी बन जायगा। हम जो संस्कृति निर्माण करेंगे वह केवल मनुष्यके स्वभावपर ही अवलंबित नहीं रहेगी, बल्कि हमने इस पुस्तकमें जो दृष्टिकोण शुरुसे रखा है उसपरभी अवलंबित रहेगी। हमने सारी समस्याओंको हल करनेके लिये अहिंसा और सत्य के रास्तेसे कैसे चला जा सकता है इसी दृष्टिको प्रधान रखा है। यदि यह काम सावधानी पूर्वक किया जाय और छोटेसे छोटे तफसील का भी बारीकीसे अमल किया जाय तो उन्हीं तत्वोंकी बुनियादपर बना समाज हम कायम कर सकेंगे।

सफ़ाई

व्यक्तिगत सफ़ाईकी आदतें—

पुश्तैनी आदतोंके कारण ग्रामीणोंकी व्यक्तिगत सफाईकी बहुत ऊंची कल्पना थी। बदनसीबीसे इनमेंसे कुछ कुछ अच्छी आदतें आधुनिकताके नामपर छोड़ी जा रही हैं। इसलिये सफाईकी पुरानी व्यक्तिगत अच्छी आदतों का महत्व लोगोंको फिरसे जंचाना चाहिये और जहां जुरुरत महसूस हो वहाँ नई आदतें भी डलवानी चाहिये।

सामूहिक सफ़ाई—

हमारे ग्रामीण जीवनकी मालिकामें यह सबसे कमजोर कड़ी है। आज देहातोंके रास्ते, पगडंडियां, सार्वजनिक स्थान और तालाबोंके किनारे याने सार्वजनिक पैखाने ही बन गये हैं। लोग अविचारपूर्वक चाहे जहां टट्टी फिरते हैं

और इस प्रकार लोगोंके चलने फिरनेकी जगहें और यहांतक कि पीनेका पानीभी गंदा कर देते हैं। पर इसके लिये केवल ग्रामीण ही पूर्ण रूपेण जिम्मेवार नहीं हैं। किसी गांवमें टट्टियां या पेशाबघरोंकी व्यवस्था नहीं होती, और वहांके मकान इतने छोटे और सटे होते हैं कि हरएक मकानमें इनकी व्यवस्था करना असंभवसा होता है। इसलिये सार्वजनिक टट्टियां, पेशाबघर और स्नानगृह बनाना और उनका समुचित प्रबंध रखना बहुत ज़रूरी होगया है। साथ ही साथ तमाम कूड़ा, करकट और मैलेका खाद बनानेकी योजना भी अमलमें लानी चाहिये। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था तथा सफ़ाईके लिहाज़से ऐसा कार्यक्रम ज़रूरी है। सामूहिक सफाईमें नीचे दी हुई बातोंपर विशेष ध्यान देना चाहिये:—

१. कम खर्चमें पर उपयुक्त हों ऐसी नालियां बनवाना। वे खुली हों तोभी कोई हर्ज नहीं। समय समयपर उनकी सफाई होनी चाहिये और देशी जंतु नाशक द्रव्य उनमें छोडना चाहिये।

२. नालीके पानीका शाकभाजी और फलके वृक्षोंके लिये तथा टट्टियां धोनेके लिये उपयोग करना चाहिये।

३. तमाम कूड़ा करकट इकट्ठा करना चाहिये और उसकी खाद बना देनी चाहिये।

४. गांवोंके कुएं, पगडंडियां, तालाब और मैदान साफ़ सुथरे रखना

५. गांवोंके लोगोंके उपयोगके लिये छोटे छोटे बाग लगाना और उनकी व्यवस्था रखना, बच्चोंको खेलने के लिये साफ़ सुथरे मैदान रखना।

स्वास्थ्य

१. गांवोंकी खुराक—गांवोंमें पौष्टिक खुराकका अभाव जहांतहां दिखाई देता है। ग्रामोंमें ही पैदा हो सकनेवाली कई चीज़ोंकी खाद्योपयोगिता देहातियोंको समझानी चाहिये। संतुलित आहारके मानी क्या हैं और देहाती पैदावारोंसे भी संतुलित आहार कैसे कायम किया जा सकता है इसकी जानकारी हरएक कुटुंबको होनी चाहिये।

स्वास्थ्य विभागको चाहिये कि वह इस दिशामें शिक्षा देनेका काम हर केंद्रमें जारास शुरू करे। उन केंद्राके क्षेत्रोंकी चावलकी मिलोंपर पाबंदी लगाकर सरकारको इस कामका श्रीगणेश करना चाहिये।

२. पीनेका पानी—साफ पीनेके पानीकी व्यवस्था एक बुनियादी जरूरत है। गांवोंमें मौजुदा कुओंसे कहीं अधिक कुओंकी जरूरत है। पुराने कुओंकी मरम्मत करनी चाहिये। कहीं कहीं साफ और सुरक्षित पानीके तालाबोंसे पीनेका पानी मुहैया कराना पड़ेगा। सबसे पहले किये जाने वाले जरूरी कामोंमेंसे यह एक है।

३. रोक थामके इलाज—रोगोंका इलाज करनेके बदले रोगोंकी रोक थामके इलाज करनेपर अधिक ज़ोर देना चाहिये। इसका मतलब है संतुलित आहारपर ज़ोर, व्यक्तिगत और सामूहिक सफाईपर ज़ोर, आम तौरसे सफाईकी रहन सहन और व्यायाम और मनोरंजनकी व्यवस्था।

४. मामूली बीमारियाँ और उनके सस्ते इलाज—

देहातोंकी मामुली बीमारियोंकी रोकथाम और इलाज लोगोंको सिखाना चाहिये। कुदरती पद्धतियां और देहातोंमें मिलनेवाली जड़ी बूटियोंके सस्ते इलाज इनपर खास ज़ोर देना चाहिये। सस्ते जंतुनाशक द्रव्य कैसे तैयार करना और उनका कैसे उपयोग करना यह हर कुटुंबको सिखाना चाहिये। स्वास्थ्य विभाग को चाहिये कि इस दृष्टिसे वह विषैली जड़ी बूटियोंका संशोधन करावे।

५. व्यायाम और मनोरंजन—

हरएक गांवमें खुले मैदान रखे जाने चाहिये और वहां मनोरंजन और व्यायामके साधन उपलब्ध होने चाहिये। सूर्य नमस्कार, आसन और सामूहिक ग्रामीण खेल इनको प्रोत्साहन देना चाहिये और इनका संगठन करना चाहिये।

मकानात :

अधिक अच्छे और स्वास्थ्यप्रद मकान बहुत महत्व रखते हैं। गांवोंके मकान गंदे होते हैं, उनमें रहनेवालोंकी काफी भीड़ रहती है और वे किसी एक नकशेको लेकर बने नहीं होते। इसके लिये कोई अच्छी योजना बनाकर यह हालत बिलकुल बदल देनी है। ऐसी योजना ग्राम पंचायत, सरकारी स्वास्थ्य विभाग और सरकारी पब्लिक वर्क्स विभागके अधिकारियोंकी सहायतासे बनावे। उसमें नीचे लिखी बातोंपर जोर रहे :—

१. गांवोंके बाहर मकान बनानेकी एक योजना बनाकर गांवोंके मकानोंकी भीड़ कम करना

२. भविष्यमें सब मकान केवल सहकारी तत्वोंपर ही बनाये जावें।

३. मौजूदा मकानोंमें कैसे सुधार किये जा सकते हैं इसका शिक्षा द्वारा प्रचार

४. हरएक मकानको गंदा पानी बहा ले जाने के लिये नालियां होनी चाहिये और सड़क का पानी बहा ले जानेवाले गटर रास्तोंपर होने चाहिये। पहला काम सोकपिट बनाकर और उन्हें समय समयपर साफ करवाकर किया जा सकता है। दूसरा काम सस्ती—फिर वे भलेही खुली क्यों न हों—नालियां बनवाकर और उन्हें समय समयपर साफ कराकर और उनमें जंतुनाशक द्रव्य डालकर किया जा सकता है। आम तौरसे तमाम गंदा पानी साग सब्जी और फल झाडोंके बगीचों में छोडना चाहिये।

५. गांवोंके मकान बहुत छोटे होते हैं और उनमें रहनेवालोंकी संख्या बहुत होती है। इसलिये हरएक गांवमें सार्वजनिक पाखाने और स्नानगृह होने चाहिये।

६. जहां कहीं गंदला पानी इकठ्ठा होता हो उन गड्ढोंको पूर देना चाहिये। क्योंकि ऐसे गंदले पानीके डबरे मलेरिया आदि बुखारके कारण बन जाते हैं।

७. किसी योजनानुसार गांव के रास्ते और पगडंडियां निश्चित करनी चाहिये।

८. सरकारी स्वास्थ्य विभाग और लोक कर्म विभागोंको चाहिये कि वे देहातोंकी दृष्टिसे आदर्श मकान कैसे हो सकते हैं इसके छोटे छोटे नमूने बनवाकर लोगोंको बतावें।

९. चंद गांवोंमें सफाई और स्वास्थ्यकर वातावरणकी दृष्टिसे इष्ट रद्दोबदल कर सकना यदि नामुमकिन हो तो वे गांव नजदीककेही खुले मैदानमें क्रमशः धीरे धीरे योजनापूर्वक बनाने चाहिये। इस नई जगहमें जगह तो मुफ्तही मिलनी चाहिये और सहकारी तत्वपर मकान बांधने के लिये कुछ आर्थिक सहायता दी जानी चाहिये।

१०. मकान बनवानेकी कोई भी नई योजनाओंमें आजके समान हरिजनोंकी बस्ती गांवसे अलग न रखी जाय इसकी खास खबरदारी रखनी चाहिये।

ग्रामका संगठन :

यह तीन संस्थाओंके मार्फत किया जा सकेगा। (१) ग्रामकी व्यवस्थाके लिये ग्राम स्वराज्यकी तौरपर चलाई जानेवाली ग्राम पंचायत (२) ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था बांधनेके लिये विविध उद्देशीय सहकारी संस्था और (३) गैर सरकारी तौरपर तमाम ग्रामीणोंकी शक्ति ग्रामोत्थानकी योजनाकी सफलताके लिये केंद्रित करनेके लिये एक ग्राम सेवा संघ

१. ग्राम पंचायत :

हर गांवकी या कुछ गांवोंकी मिलकर एक ग्राम पंचायत होनी चाहिये। इसका चुनाव प्रौढ़ मतदानकी बुनियाद पर होना चाहिये और उसकी सुविधाके लिये गांव या गांवोंको कई सुविधाजनक वॉर्डोंमें बांट देना चाहिये।

गांवोंसे सीधा संबंध रखनेवाली हरएक बाबदकी जिम्मेदारी इस ग्राम पंचायतकी होनी चाहिये। उदाहरणार्थ गांवोंके रास्ते, गांवोंके पीनेके पानीका इंतजाम, गांवोंकी शिक्षा, गांवोंके दवाखाने, गांवोंकी सफाई, कुछ हदतक न्याय-दान, गांवोंकी रोशनीका इंतजाम आदिकी व्यवस्था ग्राम पंचायत के जिम्मे होनी चाहिये। हरएक गांवमें उपर्युक्त सुविधाएं अवश्य होनी चाहिये। यदि इकट्ठा होनेवाला पैसा और इस कार्यके लिये दिया जानेवाला उसका हिस्सा पर्याप्त न होता हो तो सरकारको चाहिये कि वह फ़र्क़ की रकम स्वयम् दे।

लायब्रेरी, सभा भवन, प्रदर्शन आदि एक दूसरी किस्मकी सुविधाएं हैं जिनका खर्च कुछ स्थानिक चंदेसे और कुछ सरकारकी ओरसे मिलना चाहिये।

चुने हुए क्षेत्रकी सभी पंचायतोंका एक यूनियन होना चाहिये। इस यूनियनका काम अपने मातहतकी सब पंचायतोंके आवश्यक कामोंको एक दूसरे से संबंधित करनेका होगा। ये यूनियन पंचायतोंको मार्गदर्शन करेंगे, उनका निरीक्षण करेंगे और उनके हिसाबोंकी जांच करेंगे। ये युनियन बुनियादी और उत्तर बुनियादी शिक्षाकी व्यवस्था करेंगे और बड़े अस्पताल और सूतिकागृह चलावेंगे। इन यूनियनोंके मातहत एक असिस्टंट इंजिनीयर रहा करेगा जो सब कामोंके तखमीने बनायेगा और काम पूरे करेगा।

उस क्षेत्रकी तमाम पंचायतोंके नुमाइंदे इन यूनियनोंमें रहेंगे। इनके कामोंके लिये पंचायतोंसे और सरकारसे ग्रँट मिला करेगी।

विशेष सूचना :

ग्राम पंचायतें केवल व्यवस्था देखनेवाली समितियाँ ही न बनें। उनको चाहिये कि वे ग्रामीणोंको सच्चे नागरिककी जिम्मेवारियोंसे परिचित करावें और हर बालिग व्यक्तिको ग्रामीण नागरिकके नाते अपने हक क्या हैं और कर्तव्य क्या हैं इसका भान करावें। सामाजिक सुधार जैसे जुआ और तत्सम बुराइयोंको रोकना, लोगोंमें जो अंधविश्वासकी प्रवृत्ति है उसे हटाना और अस्पृश्यता आदि को दूर करना ये काम भी उन्हें उठाने चाहिये।

सदियोंसे हरिजन और आदिवासी लोग पूरे समाजसे पृथकसे हो गये हैं। वे समाजके ही एक अंग हैं और उन्हें अलग रखना सामाजिक अन्याय है यह बात लोगोंको जंचानेकी सख्त जरूरत है। इसके लिये जोरदार और खास संगठित प्रयत्न होना चाहिये। समाजमें स्त्रियोंकी दर्दनाक हालत यह भी एक गंभीर सवाल ही है, पर यह किसी एक संस्था या विभाग द्वारा हल नहीं किया जा सकता। इसके लिये तो सारे समाजको जागृत करनेकी और पुराने ख्यालात सुधारनेकी ज़रूरत है। इस दिशामें खास ध्यान देनेकी ज़रूरत है। इस कामके लिये कुछ अनुभवी और गृहशास्त्रमें (उदाहरणार्थ रसोई बनाना, दवा दारू करना, बुनाई दर्जीकाम, इ०) निपुण स्त्रियां उपयुक्त साबित होना मुमकिन है।

२. विविध उद्देशीय सहकारी समितियां :

जिस प्रकार गांवकी राज्यव्यवस्थाका काम ग्राम पंचायतें करेंगी उसी प्रकार उसकी अर्थव्यवस्थाका काम ये विविध उद्देशीय सहकारी समितियां करेंगी। ये समितियां नीचे दिये हुये काम करेंगी :—

१. गांवका अनाज एकत्र कर उसका संग्रह करना।

२. खुराकी चीजोंपर क्रियाएं करना।

३. गांवोंके उत्पादनका और आवश्यक आयात किये हुये मालका संतुलित वितरण।

४. कृषिकी विभिन्न क्रियाओंमें तथा ग्रामोद्योगोंमें लगनेवाले औजारोंका संग्रह रखना।

५. कपास, ऊन, लकड़ी, धातु इत्यादि आवश्यक कच्चे मालोंका संग्रह करना

६. तैयार मालकी बिक्री करना।

७. गांवकी अतिरिक्त पैदावार के बदलेमें बाहरसे आयात की जाना जरूरी है ऐसी चीजें लाना।

८. परस्पर सहकारिताके तत्वपर प्रमुख ग्रामोद्योगोंको संगठित करना जिससे उन उद्योगोंसे मिलनेवाला मुनाफा या लाभ यथासंभव उस समूचे गांवको ही मिले। तमाम लोगोंको उपयुक्त कामोंमें संलग्न रखनेकी फिक्र रखनी चाहिये ताकि थोड़ी भी मनुष्य शक्ति बेकार न जाने पावे। उद्देश्य यह हो कि कोई भी बेकार या अर्ध बेकार न रहने पावे।

९. ग्रामीण कलाकारोंको अपनी कलाओंमें उन्नति करनेकी प्रेरणा दे सकें ऐसे अद्यावत कुशल कलाकार जुटाने चाहिये। इस प्रकारकी शिक्षा और निरीक्षणका सारा खर्च सरकारको उठाना चाहिये।

१०. हरएक समूचे क्षेत्रके लिये एक ट्रेन्ड कोऑपरेटिव्ह इन्स्पेक्टर चाहिये।

११. गांवको तथा ग्रामीणोंको तमाम उपलब्ध जानकारी मयस्सर कराना और उनका मार्गदर्शन करना।

३. ग्राम सेवा संघ :

अब यह सवाल उठाया जा सकता है कि ग्राम पंचायत और विविध उद्देशीय सहकारी समितियाँ जब ग्राम की व्यवस्था कर रही हैं तब फिर ग्राम सेवा संघोंकी क्या जरूरत है? पर यह न भूलना चाहिये कि ग्राम पंचायत और विविध उद्देशीय सहकारी समितियां इनमें केवल कुछ चुने हुए प्रतिनिधि ही काम करेंगे और उनको चुन देनेवाले तमाम बालिग लोग क्या केवल प्रेक्षकोंका ही काम करते रहेंगे? यदि हम उन्हें किसी कार्य के लिये नहीं प्रयुक्त करेंगे तो उनकी ऐसे प्रेक्षकोंकी सी हालत रहेगी। हमारे ख्यालसे ग्राम सेवा संघ ये गैरसरकारी स्वयंसेवकोंकी संघटना होगी जिसके सदस्य ऐसे काम करेंगे जो ग्राम पंचायत और विविध उद्देशीय सहकारी समितिके कार्योंको पोषक होंगे। ग्राम सुधार अफसरोंको चाहिये कि वे ग्राम सेवा संघोंके संघटनमें, उनको बलशाली बनाने में और उनका पूरा उपयोग कर लेने में प्रयत्नशील रहें। ये संघ स्वतंत्र रहेंगे, उनका अपना निजी विधान, कायदे कानून और पैसा रहेगा। सरकार ऐसे संघोंकी आजादी

कायम रखते हुए इन्हें ग्रँट दे सकती है। ग्राम सेवा संघ गांवोंकी सफाई करनेके लिये, ग्रामीण सभाएं और त्यौहारोंमें प्रबंध रखने के लिये, ग्रामीणोंकी जानो मालकी रक्षा करनेके लिये और बाढ़ या किसी संक्रामक रोगके प्रादुर्भावके समय लोगोंकी सेवा करने और राहत पहुंचाने के लिये स्वयंसेवक तैयार रखने का काम करेंगे। सच पूछा जाय तो हरएक सरकारी, ग्राम पंचायती या सहकारी समिति के वैतनिक कर्मचारी के साथ कई अवैतनिक स्वयंसेवक काम करने के लिये जरूरी हैं। ऐसे स्वयंसेवक ग्रामके लोगों में से ही तैयार करने का काम ये ग्राम सेवा संघ करेंगे।

नोट—अबतक हमने ग्रामोंके संगठनके साधनके तौरपर ग्राम पंचायत, विविध उद्देशीय सहकारी समितियां और ग्राम सेवा संघ इनका जिक्र किया पर ग्रामोंके संगठन का अंतिम ध्येय तो ग्रामोंको खुराक, कपड़ा और अन्य महत्वकी जरूरियातोंके निस्बत स्वावलंबी बनाना है। यही ग्रामीण जीवनकी बुनियाद है और वह हमें शांतिमय उपायोंसे और प्रजातंत्रके सिद्धांतोंके अनुसार पक्की करनी है।

ग्रामीण संस्कृति :

ग्रामीण संस्कृतिकी ओर किसीका भी ध्यान नहीं है। पर उसकी पुख्ता बुनियाद बिना ग्रामीण स्वायत्तशासन या ग्रामीण स्वावलंबन कभी स्थायी नहीं हो सकते। कई सदियोंके अनुभवोंके बाद भारतने एक ऐसी संस्कृति निर्माण की है जो सब किस्मके आघात सहकर पुख्ता बन गई है। उसका नये दृष्टिकोणसे संशोधन, परिवर्धन होना चाहिये। इस संस्कृतिकी देहातोंकी स्त्रियां खास वारिस हैं और इसीसे ग्रामीण जीवनको सुंदरता और बल मिलता है। ऐसा कई बार देखा गया है कि देहातकी बुढ़िया विश्वविद्यालयोंके स्नातकोंको अपनी व्यावहारिक बुद्धिमानी और जीवनकी समस्याओंके उकेलोंसे मात दे देती हैं। इस संस्कृतिको पनपानेके लिये नीचे दी हुई सूचनाएं की जाती हैं :—

१. ग्रामोंकी परंपरा और आदतें, ग्रामोंकी संस्थाएं और ग्रामोंका इतिहास इनका अभ्यास किया जाना चाहिये।

२. लोकगीत, लोक कहानियां और लोक कला इनका अभ्यास होना चाहिये।

३. कलाकौशलके हस्तोद्योग और अन्य ग्रामीण कलाओंका पुनरुज्जीवन और संशोधन होना चाहिये।

४. ग्रामीणोंकी शिक्षाकी दृष्टिसे भजन, कीर्तन, नाटक आदि संगठित करना चाहिये।

५. ग्रामीण उत्सव और अन्य महत्वके धार्मिक उत्सव संगठित कर जातिपांति निरपेक्ष ग्रामीण एकता बढ़ाना—विभिन्न जातियोंके और धर्मोंके अनुयाइयोंको एक दूसरेके धार्मिक उत्सवोंमें खुशीसे भाग लेनेके लिये प्रवृत्त करना चाहिये।

६. ग्रामीण वाचनालय, संग्रहालय और अध्ययन मंडल संगठित करना चाहिये।

७, खेल कूद, लोकनृत्य, दौरे आदि खुले मैदानोंमें किये जानेवाले मनोरंजक कार्यक्रम संगठित करने चाहिये।

नोट—ग्रामीण संस्कृतिमें जो नवीनता लानी है वह यह है कि वह सृजनात्मक बने और उसके कारण लोगोंके मूल्यांकनके पैमाने बहुत ऊंचे दर्जेके बनें। इन्हीं मूल्योंका व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवनमें आचरण होना चाहिये।

अध्याय ११ वां

एक आदर्श योजना

स्थायी समाज व्यवस्था कायम करनेकी दृष्टिसे जीवनके विभिन्न अंगोंको किस प्रकार बनाना चाहिये इसका अबतक ज़िक्र हुआ। देशको किन आदर्शोंके अनुसार संगठित करना ज़रूरी है इसका हमने निर्देश किया है।

यह उद्देश्य साध्य होनेके लिये हमें प्रयोगशालाके तौरपर कहीं प्रत्यक्ष इन दिशाओंमें काम किया जाना दिखाना चाहिये। वहीं भावी कार्यकर्ताओंकी ट्रेनिंगकी भी व्यवस्था हो सकेगी। इसलिये अबतक जिन दिशाओंमें काम करना सुझाया गया है उनके मुताबिक प्रत्यक्ष काम किसी एक गांवमें या गांवोंके एक समूहमें शुरु कर देना ज़रूरी हैं। इसके लिये भिन्न २ कामोंके लिये भिन्न २ संघ बनाये जायँ। इन संघोंके सदस्य खुदको एक स्वतंत्र प्रजासत्ताक घटकके सदस्य समझें और वे अपने अपने संघोंकी स्वतंत्र रूपसे खुद व्यवस्था करें। इन संघोंको हम 'लोक सेवक संघ' कहेंगे। और ये किसी एकही योजनाके अंतर्गत काम करेंगे।

जब ये संघ काफी बलशाली बन जावेंगे तब वे आपही आप सरकारके 'विरोधी पक्ष' बन जावेंगे, क्योंकि वे अपने कार्यसे सरकारको काम करनेका सही तरीक़ा बतलाते रहेंगे।

स्पर्धा प्रधान व्यवस्थामें सरकारी कार्यकारिणीपर विरोधी पक्ष का अंकुश रहता है; पर हमें जिस तरहकी सत्य और अहिंसाकी बुनियादपर खडी व्यवस्था अभिप्रेत है उसमें ऐसे विरोधी पक्षको कोई स्थान नहीं। हमारी यह कोशिश रहनी चाहिये कि हमारी कार्यपद्धति की अच्छाईसे सरकारका ध्यान उसकी ओर आकर्षित होजाय और वह अपने कामोंमें उन्हीं योजनाओंकी नक़ल करे। प्रथम तो यह संगठन कई स्थानोंमें शुरू होगा और अंततोगत्वा ये सब एक होकर 'लोक सेवक संघ' बनेगा। यह एक बहुत बडी ताक़त होगी और सरकार उसकी

दर गुजर नहीं कर सकेगी। इसलिये ऐसे संघकी नीति का राष्ट्रके नीतिपर काफी-असर पड़ेगा।

इस संघके विधानके लिये नीचे दिये हुए सुझाव हैं :—

मंत्रि मंडळ :

इस लोक सेवक संघके मंत्रिमंडलमें अध्यक्ष और मंत्री को पकडकर ९ के करीब मंत्री होंगे। अध्यक्ष और मंत्री को छोडकर हरएक मंत्रीके जिम्मे एक एक विभाग होगा और वह उसका संचालक रहेगा। इन विभागोंके नाम इस प्रकार हैं :- १. स्वास्थ्य, २. शिक्षा, ३. अर्थव्यवस्था, ४. राजकीय विभाग, ५. सामाजिक विभाग, ६. प्रकाशन,

संचालककी कौंसिल :

इन विभागोंकी नीति मंत्रिमंडलके सदस्य अपनी अपनी कौंसिलकी रायसे तय करेंगे। उन्हें कार्यान्वित करनेका काम स्वयम् संचालक करेंगे। संचालक की कौन्सिलमें वेही लोग लिये जावेंगे, जो उस विभागके अलग अलग फनमें उस्ताद होंगे।

उदाहरणार्थ स्वास्थ विभागकी कौंसिलमें एक मंत्री होगा जो खुराकके जिम्मे रहेगा, दूसरा बच्चोंकी और सर्वसाधारण लोगोंकी खुशहालीका ख्याल रखेगा, तीसरेके जिम्मे सफाईका काम रहेगा आदि। इन हरएक विभागोंके लिये भी एक एक परामर्श दात्री समिति रहेगी जिनका अध्यक्ष संचालक स्वयम् रहेगा।

मंत्रियोंकी कमेटी :

इन मंत्रियोंकी कौंसिलको सलाह मशविरेके लिये विशेषज्ञोंकी एक कमेटी रहेगी। इस कमेटीमें इस उस प्रांतके या विभागके विशेषज्ञ रहा करेंगे। उदाहरणार्थ खुराककी कमेटीमें उस विभागका मंत्री अध्यक्ष रहेगा। और उसके सदस्य विभिन्न प्रांतोंके खुराकके विशेषज्ञ होंगे जो स्वयम् लोक सेवक संघके सदस्य होंगे। इस प्रकार इन विशेषज्ञोंकी कमिटीमें सारे देश भरके विशेषज्ञ रहेंगे जिससे सब जगहोंके अनुभवोंका फायदा कमेटीको मिला करेगा।

अन्य क्षेत्रोंमेंभी इसी प्रकार संगठन निर्माण होंगे। इस प्रकार सारे देशमें ऐसी संस्थाओंका एक जालसा बिछ जायगा जो अपने ध्येय और नीतिमें एक दूसरेसे बिलकुल मिलते जुलते होंगे।

संचालकोंकी पार्लियामेंट :

केंद्रिय लोक सेवक संघका मंत्रिमंडल समय समयपर प्रांतीय या प्रादेशिक लोक सेवक संघोंके संचालकोंकी पार्लियामेंट बुलाया करेगा और उसमें नीति विषयक प्रश्नोंकी चर्चा हुआ करेगी।

उसी प्रकार एक विशेषज्ञोंकी भी आमसभा हुआ करेगी, जिसमें वे अपने अपने अनुभवों और जानकारीके बारेमें विचार विनिमय किया करेंगे।

हरएक विभागके मातहतके मंत्रियोंकी और विशषज्ञोंकी इसी प्रकार सभाएं हुआ करेंगी।

शिक्षण: इसमें विभिन्न तालीमी संघों द्वारा चलाये जानेवाले पूर्व-बुनियादी और बुनियादी विद्यालय रहेंगे, दूसरा विभाग हिंदुस्तानी प्रचारका काम उठा लेगा और तीसरा शायद उत्तर बुनियादी शिक्षाका जिम्मा ले लेगा। तीसरे विभागके मातहत विश्वविद्यालयोंके स्तरके विद्यापीठ स्थापन करना और अनुसंधान करना ये काम रह सकते हैं। इन्हीं विद्यापीठोंकी यह जिम्मेदारी रहेगी कि वे हरएक रचनात्मक कार्यके लिये नये रंगरूट तैयार कर दें। इन विद्यापीठोंमें विभिन्न तालीमी संघोंसे छात्र आवेंगे।

आर्थिक विभाग :

इस विभागके मातहत कृषि, ग्राम उद्योग, विविध उद्देशीय सहकारी समितियां ये काम और साथही साथ राजकीय जागृति निर्माण करना और प्रचार भी रहेंगे।

कृषि :

इस धंधेके संबंधकी और स्वावलंबनके निस्बतकी जानकारी कराना होगा। धंदेकी जानकारीमें केवल पैसेकी दृष्टिसे कौनसी फसलें बोना इसका मुख्य तौरपर विचार होगा और स्वावलंबी खेतीमें निजी उपयोगकी दृष्टिसे और विनिमयकी दृष्टिसे कौनसी फसलें बोना ठीक होगा इसका ज्ञान कराया जायगा। उसमें बगीचोंमें फल और साग सब्जी बोना इसपर विशेष जोर रहेगा।

पशु संवर्धन :

इस महकमेमें जानवरोंकी नस्ल सुधारना, भेड़ और बकरी पालना और साथही साथ रेशमके कीड़ोंका संवर्धन और मछली पालना इनको भी स्थान रहेगा। गोशाला चलाना और गोरसका समुचित वितरण यह भी इसी महकमेमें शुमार रहेगा। गोशाला चलानेसे जानवरोंसे संबंधित अन्य उद्योग भी यथा सींगका काम, चमड़ा सिझानेका काम, तांत बनाना, सरेस बनाना आदि आपही आप संबद्ध हो जावेंगे।

ग्राम उद्योग :

इसे सर्व प्रथम कृषि विभागसे सहयोग करके खुराकी चीज़ोंपर की जानेवाली क्रियाएं उठाना पड़ेगा। इसी के दूसरे हिस्सेमें अन्योंके लिये आवश्यक बुनियादी चीज़ें जैसे कपड़ा बुनना, साबुन बनाना, कागज़ बनाना, कुम्हार काम, चमड़ा सिझाना आदि रखने होंगे।

विविध उद्देशीय सहकारी समितियां :

ये उत्पादक और उपभोक्ता इनको जोड़नेवाली कड़ी होंगी और ये वितरण का भी काम सम्हालेंगी। वे कच्चा माल इकठ्ठा करके उसे उत्पादकोंको बांटेंगी और उनकी तैयार चीज़ें लेकर बेचेंगी। वे यथासंभव आर्थिक सहायता न कर कामके लिये सहूलियतें निर्माण कर देंगी।

राजकीय महकमा :

यह लोगोंकी आर्थिक हलचलें और सरकार इनको जोड़नेवाली कड़ी होगा। इस विभाग का मंत्री याने लोग और सरकार इनमें संपर्क स्थापित करनेवाला व्यक्ति होगा। देशके प्रमुख उद्योगोंका तथा सरकार नियंत्रित राष्ट्रीय सेवाओंका लोगोंके फायदेकी दृष्टिसे किस प्रकार नियंत्रण किया जाना चाहिये ऐसा सवाल जब जब खड़ा होगा तब तब वह प्रांतीय या केंद्रीय सरकारसे संबंध स्थापित करके उन्हें उचित मार्गदर्शन करेगा।

इस महकमेंका दूसरा विभाग प्रचारका काम करेगा। विद्यापीठोंमें जिन बातोंका अनुसंधान हुआ होगा उनकी तथा अन्य आवश्यक बातोंके आंकड़ें आदिकी जानकारी यह लोगोंको देगा और सरकारी प्रकाशन विभागसे निकट संबंध रखेगा।

राजकीय विभाग :

इसमें एक महकमा होगा जो ग्राम पंचायतें और अन्य राजकीय संस्थाएं संगठित करेगा और दूसरा महकमा प्रांतीय तथा केंद्रीय सरकारोंकी गतिविधिसे परिचित रहकर आर्थिक विभागके जन संपर्क अधिकारी से बहुत नज़दीकी सहयोग रखेगा।

सामाजिक विभाग :

इसमें १. जातीय एकता २. हरिजन तथा आदिवासियोंका उद्धार ३. कृषिके तथा अन्य मज़दूरोंका संगठन ४. नवयुवकोंको तथा स्वयंसेवकोंको राष्ट्रीय दृष्टिसे शिक्षा देना ५. स्त्रियोंपरके प्रतिबंध हटाना ये पांच महकमे रहेंगे।

प्रकाशन विभाग :

यह विभाग कायमी उपयोगकी पाठय पुस्तकें तथा संदर्भ ग्रंथ प्रकाशित करेगा और ऐसे नियतकालिक चलावेगा जिनके द्वारा हरएक विभागको एक दूसरेके कामोंकी और दुनियाके हरकतोंकी जानकारी मिलती रहेगी। इस विभागमें नवजीवन ट्रस्ट बहुत अच्छा काम कर सकता है। उसका हालका साप्ताहिक 'हरिजन' 'लोकसेवक' बनकर गांधीजीका संदेश तमाम रचनात्मक कार्यकर्ताओंको बखूबी पहुंचा सकेगा।

सारांश :

संभव है कि यह योजना बहुत लंबी चौडी मालूम होगी। पर प्रत्यक्ष अमलमें लानेकी दृष्टिसे यह बहुतही आसान है। विभिन्न लोक सेवक संघ अपना कार्यक्षेत्र २५ से ३० हजार लोकसंख्यावाले १५ या २० देहातोंके मर्यादित दायरेमें रखेंगे और अपने अपने क्षेत्रोंमें ऊपर बताये हुए कार्य लगन पूर्वक करेंगे। इस प्रकार इन संस्थाओंको लोगोंके पूरे सहयोगसे चलानेसे लोगोंको शिक्षा तो मिलेगीही पर साथही साथ सरकारके लियेभी एक आदर्श निर्माण होगा जिसका अनुकरण करनेपर हमे सच्चे दर्जेका स्वराज्य हासिल होकर उसके फायदेभी मिलेंगे।

लोक सेवक संघके सदस्यके लिये प्रतिज्ञा :

१. मैंने लोक सेवक संघका विधान और नियम पढ़ लिये हैं और मैं संघका सदस्य बनना चाहता हूं। ईश्वर कृपाके भरोसे मैं अपनी शक्ति और बुद्धिका

उपयोग ग्रामीणोंकी सेवा और उन्हें राहत पहुंचानेमें, जो कि संघका ध्येय है, खर्च करनेकी प्रतिज्ञा करता हूं।

२. मैं यथासंभव अपना जीवन संघके आदर्शोंके अनुसार व्यतीत करनेकी कोशिश करूंगा।

३. मैं अपने काममें राजनैतिक क्षेत्रमें मतभेद रहते हुएभी हर किसीकी सहायता तथा सहकार्य प्राप्त करनेकी कोशिश करूंगा।

४. लोक सेवक संघकी इच्छा और आदेश हुए बिना मैं कोई राजनैतिक काममें शरीक नहीं होऊंगा। यदि किसी लेजिसलेटिव्ह कौंसिलके चुनावमें मैं संघके आदेशानुसार खड़ा हुआ तो मैं उतनाही वेतन लूंगा जितना संघके कर्मचारियोंको मिल सकता है, और यदि कुछ अतिरिक्त आय मुझे हो तो उसे मैं लोक सेवक संघको दे दूंगा।

५. मैं हमेशा खुदके कते सूतकी बनी या अखिल भारत चरखा संघ द्वारा प्रमाणित खादी ही पहनूंगा और ग्रामोंमें बनी चीजें इस्तेमाल करना अधिक पसंद करूंगा। मैं कभी कोई नशीली चीज़ सेवन नहीं करूंगा। मैं खुद और अपने कुटुंबमें किसी भी किस्मकी छुआछूत नहीं मानूंगा। मेरा जातीय एकतामें विश्वास है। मुझे सब धर्मोंके प्रति आदर है। जाति, धर्म और लिंग निरपेक्ष सबको एकसा मौका मिलना चाहिये यह बात मैं मानता हूं।

दस्तखत

ऐसे लोक सेवक संघ देशभरमें फैलकर लोगोंको सार्वजनिक कामोंमें एक दूसरे के पास लावेंगे। वहींपर राज्यकुशल व्यक्ति शिक्षित होकर निकलेंगे जिन्हें सारे राष्ट्रकी जिम्मेदारी की धुरा अपने कंधोंपर लेनी होगी।

जबतक देश इस किस्मका संगठन नहीं अपनाता और तहे दिलसे सत्य और अहिंसाकी बुनियादपर नवसमाज निर्माण नहीं करता तबतक हमारे आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक जीवनमें कोई स्थायित्व नहीं निर्माण हो सकता। आजका संगठन स्पर्धा और केंद्रित उद्योगोंकी बुनियादपर खड़ा है और वह हमें समय समयपर विश्वव्यापी युद्धोंमें उतार देता है। यदि राष्ट्र राष्ट्रके बीच शांति कायम कर व्यक्तिको समृद्ध बनाना हो तो ऐसे मसलोंको टालना ही पड़ेगा।

ऐसेही राज्यमें निर्बलको भी उचित मौका मिला करेगा, जन साधारणको अन्याय न होगा, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ न होगी और धोखेबाजी और शोषण ये राजमान्य न होंगे। ऐसे समाजको अन्यायसे प्राप्त संपत्तिकी चमक दमक शायद न मिले और न उसके व्यक्तियोंको धूमकेतु जैसी प्रसिद्धिही हासिल हो। पर वह धीरे धीरे अपनी जंगली अवस्थासे निकलकर इन्सानकी प्रतिष्ठा अवश्य हासिल करेगा। इसके लिये काफी संयमकी जरूरत है। हमें आशा है कि हम इतना संयम जरूर दिखा सकेंगे ताकि स्थायी समाज व्यवस्था कायम हो सके।

945

अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ

प्राप्य पुस्तकोंकी सूची

शर्तें

निम्न लिखित पुस्तकें हमारे यहां मिलती हैं। जो सज्जन किताबें मंगाना चाहें उन्हें चाहिये कि वे उनकी कीमत तथा डाक खर्चकी रकम टिकटोंके रूपमें या मनिआर्डर द्वारा पेशगी भेज दें। पुस्तकें अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी और गुजराथी इन भाषाओंमें हैं। इसलिये आर्डर देते समय अंग्रेजीके लिये (अं) हिन्दीके लिये (हिं) मराठीके लिये (म), और गुजराथी के लिये (गु) ऐसा लिख देना चाहिये। **पता, डाकखाना, ज़िला, स्टेशन आदि साफ लिखें।** पुस्तकें रजिस्टर पोस्टसे चाहिये हों तो चार आने अधिक भेजें।

कोई भी बुकसेलर एक साथ कम से कम रु० २५/- के हमारे प्रकाशन मंगावें तो उन्हें १५% कमिशन और रेलसे फ्री डिलिव्हरी दी जावेगी। पुस्तकें मंगाते समय रु. १०/- पेशगी भेजने चाहिये और शेष रकम व्ही. पी. द्वारा वसूल की जावेगी।

जिनके पीछे तारेका चिन्ह (*) है वे हमारे प्रकाशन नहीं हैं। इसलिये उनपर कोई कमीशन नहीं दिया जावेगा।

रास्तेकी किसीभी किस्मकी नुकसानीके हम जिम्मेवार न होंगे।

सामान्य

गांव आन्दोलन क्यों?

ले. जे. सी. कुमारप्पा [गांधीजीकी प्रस्तावना सहित]

गांधीजी कहते हैं—ग्राम आन्दोलनकी आवश्यकता और व्यवहारिताके संबंधमें जितने कुछ आक्षेप उठाये गये हैं उन सबका श्री. जे. सी. कुमारप्पाने इस पुस्तकमें जवाब दिया है। ग्रामोंसे प्रेम रखनेवाले हरएक व्यक्तिको इसे अपने पास रखना चाहिये। शंकितोंकी शंकाएं इसे पढ़ने पर निर्मूल हुए बिना नहीं रह सकती। मुझे तो ऐसा लगता है कि नैराश्यका आन्दोलन शुरू होनेके पूर्व ठीक समयपर 'गांव

आन्दोलन क्यों ?' प्रकाशित हुआ है। यह किताब इस विषयके प्रश्नोंका जवाब देने की कोशिश करती है।

		कीमत	डाक खर्च व पॅकिंग
पांचवां संस्करण	(अं) (हिं)	३-८-०	०-४-०
	* (गु)	२-०-०	०-३-०
गांधीवादी अर्थ व्यवस्था और अन्य प्रबंध	(अं)	२-०-०	०-४-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा			
स्थायी समाज व्यवस्था भाग १	(अं) (हिं)	२-०-०	०-४-०
,, ,,	*(म)	२-८-०	०-४-०
,, ,, **भाग २**	(अं)	२-०-०	०-४-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा			

गांधीजी लिखते हैं–"येशू ख्रिस्तका उपदेश और उनका आचरण" इस पुस्तकके समान डॉ० कुमारप्पाने यह किताबभी जेलमें ही लिखी है। यह पहली पुस्तक जितनी समझनेमें आसान नहीं है। इसका पूरा मतलब समझमें आनेके लिये इसे कमसे कम दो या तीन बार ध्यानपूर्वक पढ़ जाना चाहिये। जब मैंने इसका हस्तलिखित पढ़ना शुरू किया तब मुझे कुतूहल था कि आखिर इस पुस्तकका प्रतिपाद्य विषय क्या होगा। पर पहले ही प्रकरणसे मुझे संतोष हुआ और मैं उसे आखिर तक पढ़ गया। अैसा करनेमें मुझे कोई थकावट नहीं मालूम पडी, प्रत्युत कुछ फायदा ही हुआ"

कर्म विज्ञान और अन्य प्रबंध	(अं)	०-१२-०	०-२-०
ले. जे. सी कुमारप्पा			
विज्ञान और तरक्की	(अं)	०-१२-०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा	(हिं)	०-१२-०	०-२-०
शांति और समृद्धि	(अं)	०-८-०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा			
खूनसे सना पैसा	(अं) (हिं)	०-१२-०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा			
योरप-गांधीवादी चश्मेसे	(अं)	०-८-०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा	(हिं)	०-१२-०	०-२-०
युद्धका बहिष्कार	(अं)	०-८-०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा			

		कीमत	डाक खर्च व पॅकिंग
मौजूदा आर्थिक परिस्थिति ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं)	२—१—०	०-४-०
हमारी खुराककी समस्या ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं)	१—८—०	०-४-०
जनताकी आज़ादी	* (अं)	१-१२-०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा	(हिं)	१—८—०	०-२-०
मुद्रास्फीति, उसके कारण और उपाय ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं) (हिं)	०-१२-०	०-२-०
ग्रामोंके उत्थानकी एक योजना	(अं)	१—८—०	०-२-०
ले. जे. सी. कुमारप्पा (छप रहा है)	(हिं)		
स्त्रियां और ग्रामोद्योग ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं) (हिं)	०—४—०	०-१-०

ग्राम उद्योग पत्रिका

अ. भा. ग्राम उ. संघका मासिक मुखपत्र

गांधीजी 'हरिजन' में लिखते हैं,—"ग्राम उद्योग पत्रिकामें ग्रामोंके पुनर्निर्माणमें दिलचस्पी रखनेवालोंके लिये ठोस मसाला रहता है"

वार्षिक चंदा (मय डाक खर्च)	(अं) या (हिं)	२—०—०
पिछले प्राप्य अंक	प्रति अंक	०—४—०

(अंक अंग्रेजी तथा हिंदीमें मिल सकेंगे)

अ. भा. ग्रा. उ. संघ का वार्षिक विवरण			
१९३८।३९।४०।४१ आदि पुस्तक	(अं)	०—३—०	०—२—०
१९३५।३६।३७।३८।३९।४०।४१	(हिं)	०—३—०	०—२—०
४२।४३।४४।४५।४६।४७।४८ (अं)	(हिं)	०—३—०	०—२—०

२. खुराक

चावल	(अं)	१—८—०	०—२—०
	(हिं)	०-१२-०	०—२—०
	(म)	०—८—०	०—२—०
भारतीय खाद्य पदार्थोंकी उपयुक्तता और उनमें प्राप्त जीवन तत्त्व	(अं) (हिं)	०-१०-०	०—२—०
हमें क्या खाना चाहिये ?	(अं) (हिं)	३—०—०	०—४—०

ले. [illegible]

		कीमत	डाक खर्च व पॅकिंग
अनाज पीसना	(अं)	०–८–०	०–१–०
खुराक-बच्चोंकी पाठ्यपुस्तक ले. झवेरभाई पटेल	(हिं)	१–०–०	०–२–०

३. उद्योग

		कीमत	डाक खर्च व पॅकिंग
तेलघानी— ले. झवेरभाई पटेल	(अं) (हिं)	२–०–०	०–४–०
तेलकी मिल बनाम घानी (तेलघानीमेंका एक प्रकरण)	(अं) (हिं)	०–२–०	०–१–०
मधुमक्खी पालन–	(अं) (हिं)	२–०–०	०–२–०
ताड़ गुड़	(अं) (हिं)	१–०–०	०–२–०
साबुन साज़ी– ले. के. बी. जोशी	(अं) (हिं)	१–८–०	०–२–०
हाथ कागज़ बनाना – ले. के. बी. जोशी	(अं) (हिं)	४–०–०	०–४–०
मगन चूल्हा	(अं) (हिं)	०–८–०	०–२–०
मगन दीप	(अं) (हिं)	०–८–०	०–१–०
धोती जामा	(हिं)	०–२–०	०–१–०

(एक धोतीमेंसे दो धोतीजामे किस प्रकार बनाये जा सकते हैं इसकी जानकारी इसमें दी गई है। ऐसा करनेसे आधी कीमतमें धोती पहनने को मिल जाती है)

४. पैमाइश

* मध्यप्रांत सरकारकी औद्योगिक अन्वेषण कमेटीकी रिपोर्ट

[श्री. जे. सी. कुमारप्पाकी सदारतमें]

गांधीजी लिखते हैं— दूसरे परिच्छेदमें जो सर्व साधारण चर्चा है उससे इसकी मौलिकता स्पष्ट होती है और वह यह भी बताती है कि यह रिपोर्ट शीघ्र ही अमलमें आनी चाहिये, फाईलमें केवल पडी न रहने देनी चाहिए। कमेटीने सभी उद्योगोंके निस्बत व्यवहार्य सूचनाएँ की हैं। जिज्ञासुओंको रिपोर्ट मंगाकर अवश्य पढनी चाहिये।

		कीमत	डाक खर्च व पॅकिंग
खण्ड १ भाग १ (पृष्ठ ५०) ६०६ देहातोंकी पैमाइशके बाद सरकारको की हुई सर्व सामान्य सूचनाएँ	(अं)	०–८–०	०–४–०
खण्ड १ भाग २ (पृष्ठ १३२) चुने हुए दो जिलोंकी पैमाइश और २४ ग्राम उद्योगोंपर टिप्पणियां	(अं)	१–०–०	०–४–०

		कीमत	डाक खर्च व पेकिंग
खण्ड २ भाग १ (पृष्ठ ४०) जंगल, खनिज और यांत्रिक-शक्ति उत्पादन के साधनोंके निस्बत सूचनाएं	(अं)	०-८-०	०-४-०
खण्ड २ भाग २ खनिज उत्पत्ति, जंगलकी उत्पत्ति और यांत्रिक-शक्ति उत्पादन साधनोंके चुने हुए मार्गोंका तथा बाजार, ढुलाईके साधन और कर निश्चिति आदिके संबंध में चर्चा	(अं)	०-१२-०	०-४-०

* वायव्य सरहद प्रांतके लिये एक आर्थिक योजना (पृष्ठ ३८)

ले. जे. सी. कुमारप्पा (अं) ०-१३-० ०-३-०

सर मिर्ज़ा इस्माइल लिखते हैं —प्रांतकी औद्योगिक उन्नतिके लिये जिन सवालोंपर चर्चा करना जरूरी था उनपर आपने बहुत ही साफ तौरसे चर्चा की है इसके लिये मैं आपका अभिनन्दन करता हूं। आपने यह सवाल व्यावहारिक और वास्तविक ढंग से कैसे हल हो सकता है यह बताया है।

* मातर तालुकाकी पराइशा-ले. जे. सी कुमारप्पा

(छप रहा है) (अं)

काका साहेब कालेलकर लिखते हैं :- गुजरातके मध्ये प्रातिनिधिक तालुकेकी आर्थिक हालतका अधिकृत बयान इसमें देखनेको मिलता है। पाठकोंके ख्यालमें यह बात आ जायगी कि उपर्युक्त कोष्टक बनाकर दिये गये अंक रिपोर्टके सारे निरूपणसे अधिक परिणामकारक हैं। धीरज धरनेवाली और शांतिप्रिय जनताके चूसे जानेका, निर्वीर्य बनाये जानेका और शायद नष्ट किये जानेका यह स्पष्ट चित्र है।

गांवोंकी आर्थिक जांच प्रश्नावली ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं) (हि)	०-४-०	०-१-०
ग्रामोद्योगोंकी जांच प्रश्नावली	(अं)	१-८-०	०-४-०
	(हि)	१-१२-०	०-४-०

५. फुटकर

६. अन्य.

		कीमत	डाक खर्च व पॅकिंग
राजस्व और हमारी दरिद्रता—ले. जे. सी. कुमारप्पा (गांधीजीकी प्रस्तावना सहित)	* (अं)	१–८–०	०–२–०
	(हिं)	२–८–०	०–४–०

गांधीजी लिखते हैं—" इन परिच्छेदोंमें दलीलें नहीं हैं पर वास्तविकता का दिग्दर्शन है। पाठकोंको यह ध्यानपूर्वक पढ़नी चाहिये। मैं हिन्दी तथा पाश्चिमात्य दोनों पाठकोंको यह पुस्तक पढ़नेकी सिफारिश करूंगा।"

' हिंदू ' लिखता है :—

" हिंदुस्तानकी परिस्थितिका भंडाफोड आश्चर्यकारक आंकड़ोंका आधार देकर किया गया है। हिंदी अर्थशास्त्रके हर एक विद्यार्थीको यह किताब पढने योग्य है।"

* **येशू खिस्तका उपदेश और उनका आचरण**— ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं)	१–८–०	०–२–०

गांधीजी प्रस्तावनामें लिखते हैं :-

" मैंने इस पुस्तकको गौरसे पढ़ा है और मेरा अनुरोध है कि ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास रखनेवाले हरएक व्यक्तिको, चाहे वह ईसाई हो या अन्य किसी भी धर्म का अनुयायी हो, यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये... ... ...इसमें येशू खिस्तकी जीवनीपर एक अलग ही ढंगसे प्रकाश डाला गया है। ...प्रो. कुमारप्पाके समान यदि हरएक व्यक्ति धारणा बना ले तो विभिन्न जातियोंके आपसके झगड़े या विभिन्न धर्मियोंकी आपसकी स्पर्धा नष्ट हो जायगी "

मिशनरी मासिक ' ज्ञानोदय ' लिखता है—

"हमारी दृढ़ धारणा है कि प्रभु ईसाकी आत्माने श्री. जे. सी. कुमारप्पाके यह पुस्तक लिखनेकी प्रेरणा दी है और वही इसके पाठकोंको आशीर्वाद भी देगी। हर एक पृष्ठपर झलकनेवाली शुद्धताही पढ़नेवालेका कल्याण करनेवाली है।"

* **ईसाका धर्म; उनका अर्थ शास्त्र और उनका जीवनका दृष्टिकोण**— ले. जे. सी. कुमारप्पा	(अं)	१–८–०	०–२–०

(इसमें ईसाप्रणीत सिद्धांतोंपर पाश्चिमात्य देशोंकी मौजूदा अर्थ–व्यवस्थाका [illegible]ण किया गया है।)